ग्रामीण पाठकों के लिए

रवि कहानी

अमिताभ चौधुरी

अनुवाद

अमर गोस्वामी

चित्रांकन

देवव्रत घोष

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-3061-6

पहला संस्करण · 2000 (*शक* 1921)

© अमिताभ चौधुरी, 1998

अनुवाद © नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 1999

Ravi Kahani (*Hindi*)

रु. 11.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110 016 द्वारा प्रकाशित

प्रणव मुखोपाध्याय

और

शुभ्रा मुखोपाध्याय

को समर्पित

भूमिका

रवीन्द्रनाथ की पहली छपी हुई किताब "कवि कहानी" थी। मैंने उसी की नकल में इस किताब का नाम "रवि कहानी" रखा है। रवीन्द्रनाथ सिर्फ कवि ही नहीं, यहां तक कि निबंधकार, उपन्यासकार, कहानीकार ही नहीं थे, वे इन सबसे अलग कुछ और भी थे। इस किताब में मैंने उनके सामाजिक और राजनैतिक विचारों पर बल दिया है। हालांकि उन्होंने अपने बारे में कहा है कि वे सिर्फ एक "कवि" ही हैं, लेकिन हम लोग जानते हैं कि यह बात पूरी तरह से सच नहीं है। इसके अलावा साहित्यकार रवीन्द्रनाथ के बारे में न जाने कितना कुछ कहा और लिखा जाता है, इसीलिए मैंने रवीन्द्रनाथ के एक दूसरे रूप के बारे में ज्यादा जोर दिया है। बचपन से लेकर बुढ़ापे तक इस देश की तरह-तरह की घटनाओं ने उन्हें प्रभावित किया था, इस बारे में उन्होंने लंबे बयानों और निबंधों के जरिए अपनी राय जाहिर की थी। बचपन में हिन्दू मेला में वे स्वदेशी की जिस विचारधारा से प्रभावित हुए थे, वे जीवन भर उसी का पालन करते रहे। उन दिनों के तीन प्रधान राजनेता-महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचंद्र बोस से उनकी काफी निकटता थी। गांधी जी के विचारों से उनका कई बार मतभेद रहा, लेकिन दिल से वे हमेशा उनके साथ रहे। वे जवाहरलाल नेहरू को "ऋतुराज" और सुभाषचंद्र बोस को "देशनायक" के नाम से पुकारते थे। मैंने जहां जरूरत समझी है वहां रवीन्द्रनाथ की कुछ किताबों का जिक्र भी किया है। विस्तार से मैंने उनके बारे में इसलिए

नहीं लिखा है क्योंकि अमूमन उनसे सभी परिचित हैं। इस किताब को लिखते समय मैंने प्रभात कुमार मुखर्जी की लिखी "रवीन्द्र जीवनी" से काफी सहायता ली है। उनका मैं बेहद आभारी हूं। इस पुस्तक को छापने के लिए नेशनल बुक ट्रस्ट को मैं धन्यवाद देता हूं।

अमिताभ चौधुरी

एक

रवीन्द्रनाथ को अस्सी साल की लंबी उम्र मिली थी। उनका जीवन दु:ख-सुख से भरा था। उसी के बीच में लिखते-पढ़ते भी रहे। जोड़ासांको ठाकुरबाड़ी में सन् 1861 में उनका जन्म हुआ था। उन्होंने न सिर्फ अपने परिवार का बल्कि बंगाल और पूरे देश का नाम रोशन किया। उनके पिता और दादा दोनों ही जाने-माने लोग थे। इनके अलावा भी उनके परिवार में ऐसे ही लोग और भी थे। मगर रवीन्द्रनाथ इन सबसे आगे बढ़ गए। उनका नाम इतिहास के पन्नों में दर्ज हो गया। उनको समझने और जानने के लिए उस समय के इतिहास की जानकारी जरूरी है, इसके अलावा उनके पुरखों के बारे में भी जानने की जरूरत है। जसोर जिले से कलकत्ता आकर उनके एक पुरखे ने किस तरह खूब धन कमाया तथा उनके बाद उनकी आने वाली पीढ़ी ने परिवार का नाम रोशन किया, यह कहानी जितनी रोचक है उतनी ही चौंकाती भी है। रवीन्द्रनाथ की सात पीढ़ी पहले उनके पुरखे पंचानन से यह कहानी शुरू होती है।

पंचानन कुशारी जसोर जिले से अपनी किस्मत आजमाने कलकत्ता आए थे। उन दिनों इस देश में अंग्रेजों ने अपना व्यापार शुरू ही किया था। सन् 1690 ईसवी में जॉब चार्नक नामक एक अंग्रेज इस देश में आए थे। उसके कुछ साल बाद ही जसोर के पीठाभोग नामक गांव से सूतानुटी अंचल में गंगातट पर पूजा-पाठ कराने के लिए कुशारी महोदय का आगमन हुआ। लोग उन्हें "ठाकुर महाशय" कहने लगे, जिस

तरह के बाकी दूसरे पुरोहितों को कहते थे। तभी से उनका नाम पंचानन ठाकुर पड़ गया। बाद में उनकी आने वाली पीढ़ी के साथ यही पदवी जुड़ गई।

पूजा-पाठ करने के साथ-साथ ठाकुर महाशय घाट पर खड़े जहाजों के कप्तानों के साथ थोड़ा बहुत लेन-देन का कारोबार भी करने लगे। इससे उनकी अच्छी आमदनी होने लगी। कई साल बाद उनके पास खूब पैसा हो गया। इन दिनों जहां पर आज फोर्ट विलियम है, वहां पर उन्होंने अपना एक मकान बनाया। जब मुर्शिदाबाद के नवाब अलीवर्दी खां से अंग्रेज़ों की लड़ाई छिड़ गई तब वहां पर अंग्रेजों को अपना किला फोर्ट विलियम बनाना पड़ा। वहां के निवासियों को ढेर सारा पैसा देकर उन्हें उत्तर की तरफ भेज दिया गया। ठाकुर परिवार पाथुरियाघाटा में चला गया।

पंचानन के बेटे का नाम जयराम था। वे सरकारी अमीन थे। उनके कारण घर में और पैसा आया। उनके बेटे का नाम नीलमणि था। नीलमणि के छोटे भाई थे दर्प नारायण। सभी भाइयों के पास काफी पैसा था। इसलिए उनमें आपसी झगड़े भी शुरू हुए। नीलमणि ने परिवार से अलग होकर जोड़ासांको इलाके में एक बस्ती की नींव डाली। सन् 1784 में उन्होंने वहां एक काफी बड़ी कोठी बनवाई। वही कोठी जोड़ासांको ठाकुरबाड़ी, बाद में महर्षि भवन के नाम से मशहूर हुई।

नीलमणि के बड़े बेटे का नाम रामलोचन था। वे खूब प्रभावशाली और धनी थे। उन्होंने अपने धन को और बढ़ाया। लेकिन उनकी कोई संतान नहीं थी, इसीलिए उन्होंने अपने छोटे भाई राममणि के दूसरे बेटे द्वारकानाथ को गोद ले लिया। द्वारकानाथ 1794 को पैदा हुए थे। वे काफी दबंग और बुद्धिमान थे। उन्होंने अपनी जमीन-जायदाद खूब

बढ़ाई। अपना कारोबार भी बढ़ाया। उन्होंने कोयले का धंधा शुरू किया, कार टैगोर एंड कम्पनी की नींव डाली। मध्यबंग और उड़ीसा में एक के बाद एक जमींदारी खरीदते-खरीदते वे कलकत्ता शहर के सबसे ज्यादा धनी और नामी आदमी बन गए। सन् 1842 में पहली बार विलायत पहुंचकर उन्होंने इंग्लैंड की रानी विक्टोरिया के साथ दोस्ती की। रानी उन्हें "भाई प्रिंस" कहती थी। तभी से वे प्रिंस द्वारकानाथ कहे जाने लगे। वहां के अन्य जाने-माने लोगों में कथाकार चार्ल्स डिकेन्स उनके अच्छे दोस्त बन गए। उस समय के जितने नामी लेखक, कलाकार और प्रभावशाली अंग्रेज थे उन सभी से उनकी खूब निकटता थी। फ्रांस और जर्मनी में भी उन्हें राज सम्मान मिला। पेरिस में मैक्समूलर से भी दोस्ती कायम हुई। भारत वापस लौटने के बाद सन् 1845 में वे एक बार फिर इंग्लैंड गए। सन् 1846 में इंग्लैंड में ही उन्होंने आखिरी सांस ली।

द्वारकानाथ के बड़े बेटे देवेन्द्रनाथ थे। अपनी जवानी भोग-विलास में बिताने पर भी बाद में उनका मन धर्म-दर्शन की ओर मुड़ गया। इसीलिए उन्हें लोग महर्षि कहते हैं। उन्होंने अपने लंबे जीवन में लोगों की भलाई के लिए काफी कुछ किया। ब्राह्मधर्म का प्रचार और प्रसार भी उन्हीं के हाथों हुआ। वे ही उसके सब कुछ थे। उन्होंने "तत्वबोधिनी" नाम से एक पत्रिका निकाली थी। समाज सुधारक होने के अलावा बांग्ला साहित्य में उनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। वे बहुत सुंदर बांग्ला गद्य लिखते थे। उनकी बढ़िया भाषा के कारण ही उनकी खुद की लिखी जीवनी बार-बार पढ़ी जाने लायक है। वे सिर्फ ब्राह्म समाज के नेता ही नहीं थे, हिंदू समाज के भी नेता थे। काफी लोग उन्हें "महर्षि" के साथ "राजर्षि" कहना ज्यादा ठीक समझते थे। धर्म चर्चा के साथ-साथ वे समाज और परिवार की



परेशानियों का समाधान भी आसानी से कर देते थे। उनकी पत्नी शारदा सुंदरी, जो कई संतानों की माता थी, भी गुणवती महिला थी।

उनके बेटों में रवीन्द्रनाथ के अलावा द्विजेन्द्रनाथ, सत्येन्द्रनाथ और ज्योतिरिन्द्रनाथ उस समय के पढ़े-लिखे लोगों में अपनी खास हैसियत रखते थे। उनकी बेटी स्वर्णकुमारी भी उस जमाने की नामी लेखिका थी। इसके अलावा उनके छोटे भाई गिरीन्द्रनाथ, पोते गगनेन्द्रनाथ और अवनीन्द्रनाथ ने कला जगत में नए युग की शुरूआत की। देवेन्द्रनाथ के एक और पोते बलेन्द्रनाथ भी बांग्ला गद्य के जाने-माने लेखक थे। कुल मिलाकर जोड़ासांको ठाकुरबाड़ी परिवार अपने जमाने में कलकत्ता

का सबसे मशहूर परिवार था। साहित्य-संगीत-संस्कृति के अलावा धन-दौलत में भी वह परिवार किसी से पीछे नहीं था। इस परिवार के लोगों ने ही अपनी चाल-ढाल, पठन-पाठन, चिंतन-मनन के जरिए नए जमाने की शुरूआत की।

रवीन्द्रनाथ जोड़ासांको के इस ठाकुर परिवार की चौदहवीं संतान थे। सबसे अंतिम संतान बुधेन्द्रनाथ की कम उम्र में मौत हो जाने पर वे ही परिवार के अंतिम संतान माने जाने लगे। जोड़ासांको ठाकुरबाड़ी में वे 6 मई 1861 को पैदा हुए। ठीक उसी साल और उसी दिन एक और बालक पैदा हुआ, जिसने भी अपना नाम इतिहास में रोशन किया-पंडित मोतीलाल नेहरू, जिनके बेटे जवाहरलाल के साथ बाद में रवीन्द्रनाथ की अच्छी निकटता हुई।

रवीन्द्रनाथ जब पैदा हुए थे, उन दिनों बंगाली समाज और वहां के जन-जीवन में, हर तरफ आजादी की मांग जोरों पर थी। इसके अलावा जोड़ासांको ठाकुरबाड़ी जितनी विशाल थी उतनी ही अनोखी थी।

रवीन्द्रनाथ के बचपन का अधिकतर समय नौकरों-चाकरों के साथ बीता। इसीलिए वे अपने इस समय को "भृत्यराजकतंत्र" यानी नौकरों की हुकूमत का समय कहते थे। नौकरों के हाथों घर में बंदी जीवन बिताने के दौरान उनके कमरे की खिड़की से नजर आने वाली बाहर की दुनिया ही उनकी साथी थी। उनके बरामदे की रेलिंग के साथ भी उनका काफी समय बीतता था। अपने हाथ में एक छोटी सी छड़ी लेकर "मास्टर" रवीन्द्रनाथ रेलिंग की कड़ियों को अपना छात्र समझकर उनके साथ वैसा ही पेश आते थे।

उनके घर में संगीत, कला और लेखन का माहौल था। उनके घर में कोई कविता या नाटक लिखता तो कोई गीत, तो कोई पियानो बजाता था। बच्चों और बड़ों को विष्णु चक्रवर्ती और यदु भट्ट जैसे

गायक आकर रोज गाना सिखाते थे। बाहर अखाड़े में कुश्ती लड़ना और दंड. बैठक करना पड़ता था। उनके बड़े भाई और भाभियां घोड़े पर सवार होकर मैदान में घूमने जाती थीं। बचपन से ही रवीन्द्रनाथ का गला बहुत सुरीला था। उन्होंने खुद ही कहा है कि कुश्ती और अपनी पढ़ाई के दौरान मौका मिलते ही वे न जाने कब से गाना गाने लगे थे।

उनके संझले बड़े भैया हेमेन्द्रनाथ की देखभाल में बालक रवीन्द्रनाथ को कई तरह की पढ़ाई करनी पड़ी उनके घर पर एक से अधिक मास्टर पढ़ाने आते थे। रवीन्द्रनाथ को ओरिएंटल सेमिनरी स्कूल में भर्ती कराया गया। वह स्कूल पसंद न आने पर बाद में वे बंगाल एकेडमी तथा नार्मल स्कूल में पढ़ने गए। सेंट जेवियर्स स्कूल में भी उन्होंने कुछ दिन पढ़ाई की, लेकिन किसी भी स्कूल में उनका मन नहीं लगा। इसीलिए घर में पढ़ाने वाले गुरूओं की देख रेख में धीमी गति से उनकी पढ़ाई चलने लगी। अन्य विषयों की तुलना में संस्कृत, बांग्ला और अंग्रेजी भाषा में वे बेहतर साबित हुए। बचपन में ही उन्होंने "कुमार संभव" कविता और "मैकबेथ" नाटक का बांग्ला में अनुवाद करने की भी कोशिश की थी। इसके अलावा बड़े भाई द्विजेन्द्रनाथ की लाइब्रेरी से "विविधार्थ संग्रह" और "अबोध बंधु" पत्रिकाएं पढ़कर बालक रवि को लगा कि उन्होंने बड़ी अनोखी चीज पढ़ ली है। उनका ऐसा ही हाल बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय की पत्रिका "बंग दर्शन" पढ़ने के बाद भी हुआ।

6 फरवरी 1873 को उनका जनेऊ संस्कार हुआ। इसके बाद वे अपने पिता के साथ हिमालय घूमने गए। रास्ते में शांतिनिकेतन भी गए। वहाँ पर एक ताड़ के पेड़ के नीचे बैठकर उन्होंने "पृथ्वीराज पराजय" नामक कविता लिखी। मगर वह कविता उनसे कहीं खो गई।

बोलपुर से रेलगाड़ी में सवार होकर साहबगंज, दानापुर, इलाहाबाद, कानपुर, आदि जगहों में रुकते हुए पिता और पुत्र दोनों अमृतसर पहुंचे। वहां पर गुरूबाणी और शबद-कीर्तन सुनने के बाद वे डलहौजी गए। वहां वक्रोटर शिखर पर दोनों ठहरे, हिमालय दर्शन ने रवीन्द्रनाथ की सोच को और बढ़ाया। पिता के प्रति उनके मन में आदर भी बढ़ गया।

बचपन में रवीन्द्रनाथ के मन में हिन्दू मेला ने गहरा असर डाला था। तेरह साल आठ महीने की उम्र में इस मेले पर उन्होंने एक कविता भी लिखी थी- "हिन्दू मेला का उपहार।" यह उनकी पहली कविता थी जो बांग्ला के 'अमृत बाजार पत्रिका' में छपी थी। इसके पहले "अभिलाष" नाम से उनकी एक और कविता "तत्वबोधिनी" पत्रिका में छप चुकी थी। भारत में राष्ट्रीयता और स्वदेशी की भावना का उन्हीं दिनों प्रसार शुरू हुआ। नवगोपाल मित्र और उनके चचेरे बड़े भाई गजेन्द्रनाथ ठाकुर के प्रयास से यह मेला शुरू हुआ था। उन दिनों एक और गोपनीय सभा में भी स्वदेशी भावना पर बल दिया जाता था। रवीन्द्रनाथ उस सभा के सदस्य थे। इस सभा का नाम 'संजीवनी सभा' था। एक गुप्त भाषा में उसे "हामचुपाहाफ" कहा जाता था। स को ह, ह को स और वर्ण के पहले को तीसरे, तीसरे को पहले वाली जगह में रखकर कुछ इसी तरह की सांकेतिक भाषा में वहां बातें की जाती थीं। रवीन्द्रनाथ इस संस्था से जुड़कर गर्व महसूस करते थे। उन्हीं दिनों "दिल्ली दरबार" नाम से उन्होंने एक कविता लिखी, लेकिन वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट के कारण वह कविता उन दिनों किसी पत्र-पत्रिका में छपी नहीं।

इस बीच कवि के रूप में रवीन्द्रनाथ थोड़े बहुत परिचित होने लगे थे। उनकी "वनफूल" और "रवि कहानी" प्रकाशित हो चुकी थी

हालांकि "वनफूल" उन्होंने पहले लिखी थी पर "रवि कहानी" पहले छपी। उनके लिखे दो-चार लेख भी छप चुके थे। तभी अचानक बैरिस्टरी की पढ़ाई के लिए वे इंग्लैंड चले गए लेकिन बैरिस्टरी की परीक्षा दिए बिना ही वे वापस लौट आए।

भारत लौटकर ज्योतिरिन्द्रनाथ के सहयोग से उन्होंने "वाल्मीकि प्रतिभा" नामक गीत नाट्य, इसके बाद "कालमृगया" लिखी। असाधारण सफलता के बाद वह विविध प्रकार का लेखन करने लगे। उन्होंने "रूद्रचंदा", "संध्या संगीत", "प्रभात संगीत" और "छवि ओ गान" की रचना की। उन्हीं दिनों की लिखी "निर्झरेव स्वप्नभंग" (झरने का स्वप्न भंग) नामक कविता ने कवि के मन के बंद दरवाजे खोल दिए। इस कविता को वे अपनी यादगार कविता मानते थे।

इसी बीच उनकी माँ की मृत्यु हो गई। उससे भी दुःख की बात यह थी कि उनके कवि जीवन को प्रेरित करने वाली उनकी नई "बौठान" (भाभी) कादम्बरी देवी भी नहीं रही। कादम्बरी देवी का रवीन्द्रनाथ के जीवन पर एक अलग तरह का प्रभाव था। रवीन्द्रनाथ ने बाद में उन्हें लेकर काफी कविताएं और गीत भी लिखे।

सन् 1882 में रवीन्द्रनाथ की शादी मृणालिनी देवी से हुई। खुलना के एक मामूली परिवार की लड़की होने पर भी उन्होंने कवि के जीवन में विशेष प्रभाव डाला था। सन् 1902 में सिर्फ अठाइस साल की उम्र में उनकी मृत्यु हो गई। उनके पांच बच्चे हुए थे। उनकी बड़ी लड़की माधुरीलता की शादी मुजफ्फरपुर के कवि बिहारीलाल चक्रवर्ती के बेटे शरतचंद्र चक्रवर्ती के साथ हुई थी। उनके बाल-बच्चे नहीं हुए। रवीन्द्रनाथ के बड़े बेटे रथीन्द्रनाथ की शादी अवनीन्द्रनाथ की बहन विनयनी देवी की बेटी प्रतिभा देवी से हुई। उनके भी बाल-बच्चे नहीं थे, मंझली बेटी रेणुका का भी यही हाल था। सबसे छोटे बेटे

शमीन्द्रनाथ की बचपन में ही मृत्यु हो गई थी। छोटी बेटी मीरा देवी की दो संतानें थीं। एक बेटी और एक बेटा। उनके बेटे नीतीन्द्रनाथ की मृत्यु सिर्फ 19 साल की उम्र में जर्मनी में हो गई। बेटी नंदिता का विवाह कृष्ण कृपलानी के साथ हुआ। उनकी भी कोई संतान नहीं थी अर्थात् रवीन्द्रनाथ के वंश को बढ़ाने के लिए कोई जीवित नहीं रहा। रवीन्द्रनाथ ने नंदिनी नामक एक गुजराती लड़की को गोद ले लिया।

उनके परिवार में साहित्य का माहौल बना रहा। उनके यहां से साहित्य की एक मासिक पत्रिका निकलती थी, उसका नाम "भारती" था। सम्पादक थे द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर। उस समय रवीन्द्रनाथ सोलह साल के थे जब उन्होंने उसमें लिखना शुरू किया। माइकल मधुसूदन के "मेघनाथ बध" कविता पर लिखी उनकी तीखी आलोचना ने लोगों का ध्यान खींचा। "भिखारिणी" नामक एक कहानी भी उन्होंने उसमें लिखी। उन्हीं दिनों "भानुसिहेर पदावली" (भानु सिंह के पद) के नाम से ब्रजबोली में कई गीत भी उन्होंने रचे। इसके अलावा "भारती" पत्रिका में गेटे, दांते, पेत्रार्क आदि यूरोपीय लेखकों के बारे में लिखे उनके कई लेख भी छपे।

दो

सन् 1884 में असाधारण वक्ता और नवविधान ब्राह्मणों ने नेता ब्रह्मानंद केशवचंद्र सेन नहीं रहे। रामकृष्ण परमहंस अपनी साधना भक्ति के लिए पूरे कलकत्ता में मशहूर थे। रामकृष्णदेव के प्रधान शिष्य स्वामी विवेकानंद में एक नाता बना हुआ था। उनसे भी गहरा नाता भगिनी निवेदिता के साथ था। उन्हीं दिनों शशधर तर्कचूड़ामणि जैसे कई प्रमुख पंडित हिंदू धर्म विज्ञान पर आधारित हैं, इसे साबित

करने के लिए आम जनता के सामने अजब-गजब जानकारियां पेश कर रहे थे। वे लोग छींक और छिपकली गिरने की भी वैज्ञानिक व्याख्या कर रहे थे। ऐसे लोगों का मजाक उड़ाते हुए रवीन्द्रनाथ ने "हिं टिं छट" नामक कविता लिखी।

उन्हीं दिनों बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय से रवीन्द्रनाथ की विचारों की लड़ाई चल रही थी। रवीन्द्रनाथ उस वक्त आदि ब्रह्मसमाज के सभापति भी थे। बंकिमचंद्र का भी कोई कम प्रभाव नहीं था। चंद्रनाथ बसु आदि प्रमुख लेखकों को लेकर बंकिम बाबू ब्राह्म समाज का विरोध करने और हिन्दू धर्म को नई पहचान देने के काम में जुट गए। ऐसे समय पत्र-पत्रिकाओं में रवीन्द्रनाथ से बंकिमबाबू का जबर्दस्त विवाद छिड़ गया। मगर बंकिम बाबू रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा को मानते थे। रमेशचंद्र दत्त की बेटी के विवाह के समय उन्होंने अपने गले की माला रवीन्द्रनाथ को पहनाकर "संध्यासंगीत" के कवि का स्वागत किया था। बंकिमचंद्र से कवि का प्रेम जीवन के अंत तक बना रहा। दोनों के बीच विचारों की यह लड़ाई कुछ समय तक ही रही थी।

इधर जोड़ासांको ठाकुरबाड़ी के कई बालक बड़े होकर रवीन्द्रनाथ के साथी हो गए, जैसे कि बलेन्द्रनाथ, सुधीन्द्रनाथ, हितेन्द्रनाथ तथा अवनीन्द्र, सुमरेन्द्र और गगनेन्द्र- ये तीनों भाई थे। उन्हीं दिनों उनकी मंझली भाभी, सत्येन्द्रनाथ ठाकुर की पत्नी, ज्ञानदानंदिनी देवी ने "बालक" नाम की एक पत्रिका ठाकुरबाड़ी से निकालना शुरू किया। बच्चों की इस पत्रिका में रवीन्द्रनाथ कहानी, कविता, नाटक, हास्य-कौतुक आदि नियमित रूप से लिखने लगे। उनकी 'शिशु' नामक कविता की किताब की शुरू की कुछ कविताएं उन्हीं दिनों लिखी गयी थीं। इसके अलावा उन्होंने "राजर्षि" और "मुकुट" भी लिखा। लेखक के रूप में रवीन्द्रनाथ मशहूर होने लगे थे। "कड़ि ओ कोमल" (कोड़ी और

कोयल) तथा "मानसी" के बाद "सोनार तरी" (सोने की नाव) "चित्रा", "कल्पना" आदि कविता पुस्तकों से उन्होंने कवि के रूप में अपनी पहचान बना ली। इसके अलावा "मायार खेला" (माया का खेल), "विसर्जन", "चिर कुमार सभा" आदि कई प्रकार के नाटक और उनके लेख लगातार छपने लगे।

सन् 1885 में दशहरे की छुट्टियों में रवीन्द्रनाथ अपने संझले भाई सत्येन्द्रनाथ के पास शोलापुर गए, जहां वे नौकरी करते थे। सत्येन्द्रनाथ वहां के जज थे। वहां पर रहकर रवीन्द्रनाथ ने कई बहुत अच्छे लेख लिखे। "राजा और रानी" नामक नाटक लिखा। इन्हीं दिनों कलकत्ता में राजनीतिक गतिविधियां जोरों पर थीं। नेशनल कांफ्रेंस के दूसरे अधिवेशन की तैयारी भी चल रही थी। सन् 1885 में राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ।

इस बीच कवि रवीन्द्रनाथ, जमींदार रवीन्द्रनाथ बन गए। सन् 1891 में देवेन्द्रनाथ ने अपने सबसे छोटे बेटे पर जमींदारी की जिम्मेदारी सौंपकर उन्हें शिलाईदह भेजा। पूर्वी बंगाल के बिराहिमपुर, कालीग्राम और साजादपुर तथा उड़ीसा के कुछ परगने टाकुर जमींदारी में शामिल थे उनकी देखभाल का भार अपने कंधों पर लेकर रवीन्द्रनाथ एक नये काम में जुट गये। जमींदारी संभालने में रवीन्द्रनाथ ने अपनी प्रतिभा दिखाई। इसी दौरान उन्होंने बंगाल के गांवों को ठीक से पहचाना। उन्होंने गांवों के विकास के लिए नए वैज्ञानिक तरीकों से खेती करके पैदावार बढ़ाई। उनके लिखे गीत, कविता, कहानी, लेख वगैरह भी छपते रहे। गांव के लोगों से मिलने-जुलने से उनकी समझ और बढ़ी। उसका परिचय उस दौर की लिखी रचनाओं से मिलता है। खासकर उनकी लिखी कहानियों और 'छिन्नपत्र" नामक पुस्तक से रवीन्द्रनाथ ने 15 मई 1890 को भारत सरकार की कुछ नीतियों का विरोध करते

हुए "मंत्री अभिषेक" नाम से एक राजनीतिक लेख पढ़ा। उसमें उन्होंने लिखा था, "सरकार द्वारा मंत्री नियुक्त करने की बजाय आम जनता द्वारा मंत्री का चुनाव करना ज्यादा उचित है।"

इसी बीच जोड़ासांको वाले घर से "साधना" नामक एक मासिक साहित्यिक पत्रिका प्रकाशित होने लगी। इस पत्रिका में कहानी, लेख, पुस्तक समालोचना आदि के रूप में सबसे ज्यादा रवीन्द्रनाथ की ही रचनाएं रहतीं। सन् 1892 में भारतीय संगीत समाज का काम शुरू हुआ। इस समाज में नाटक खेलने के लिए रवीन्द्रनाथ ने "गोड़ाय गलद" (शुरू में ही बाधा) नामक नाटक लिखा। बीच-बीच में समय निकालकर जमींदारी का काम भी देखते रहते। राजशाही में उनकी भेंट उनके दोस्त लोकेन पालित से हुई। उनसे पहला परिचय विलायत में हुआ था। उनका साथ कवि को अच्छा लगा था। अपने एक और साथी नाटोर के महाराजा जगदिनेन्द्रनाथ से भेंट करने के लिए वे राजशाही से नाटोर भी गए।

रवीन्द्रनाथ अपने परिवार के साथ शोलापुर गए थे। अपने परिवार को मंझले भैया के पास छोड़कर वहां से वे अकेले लौट आए। बाद में जाकर मृणालिनी देवी तथा बच्चों को जोड़ासांको वापस ले आए। कुछ दिन वहां रहकर वे जमींदारी के काम से उड़ीसा चले गए। साथ में उनके भतीजे बलेन्द्रनाथ भी थे। वे उस समय साहित्य में अपने चाचा की शागिर्दी कर रहे थे। कटक पहुंचकर वे बिहारीलाल गुप्त के यहां ठहरे। कटक रहने के दौरान एक भोजसभा में वहां के रेवेन्स कालेज के अंग्रेज प्रधानाध्यापक से उनकी भेंट हुई। खाने की मेज पर बैठकर उन्होंने भारत के बारे में कुछ ऐसी बातें कहीं, जिससे रवीन्द्रनाथ बहुत खीझे और नाराज भी हुए। उन्होंने इस घटना का जिक्र करते हुए बाद में लिखा था - "किसी बंगाली के बुलावे पर उनके यहां जाकर कुछ

लोग भारत की बुराई करने में संकोच नहीं करते, इसी से पता चलता है कि वे हमें किन नजरों से देखते हैं। इस घटना की याद में उन्होंने कुछ दिनों के बाद "अपमानेर प्रतिकार" (अपमान का बदला) नामक एक लेख भी लिखा।

कलकत्ता लौटकर वहां से राजनैतिक माहौल ने उन्हें अपनी लपेट में ले लिया। उन्होंने "अंग्रेज और भारतवासी" नामक एक लंबा लेख लिखा। विडन स्ट्रीट की चेतना लाइब्रेरी में उसे उन्होंने पढ़ा। सभापति थे बंकिमचंद्र। बंकिमचंद्र से रवीन्द्रनाथ की वही आखिरी भेंट थी। उसके कुछ ही दिन बाद बंकिमचंद्र की मृत्यु हो गई। उन दिनों रवीन्द्रनाथ ने कविताओं के अलावा भी कई लेख लिखे, जो मशहूर हुए। जैसे कि "इंग्रेजेर आतंक" (अंग्रेजों का आतंक), "सुविचारेर अधिकार" (न्याय का अधिकार), "राजा और प्रजा", "राजनीतिक द्विधा" (राजनीतिक की दुविधा) आदि। इन सभी लेखों में देश प्रेम की जबर्दस्त भावना थी। उन्होंने एक जगह लिखा था- "यूरोप की नीति सिर्फ यूरोप के लिए ठीक है, भारत के लोग उनसे बिल्कुल अलग हैं इसलिए उनकी सभ्य नीति यहां के लिए कतई उपयोगी नहीं हैं।" रवीन्द्रनाथ की राय में "अंग्रेजों से दूरी बनाए रखकर भारतीयों को अपनी जिम्मेदारियों को निभाते रहना चाहिए। इससे धीरे-धीरे दोनों के बीच की आपसी कटुता भी कम होगी।"

भारत की राजनीति में इस समय सांप्रदायिकता ने बड़ी तेजी से अपने पैर पसारने शुरू किए। हिन्दू-मुसलमानों के सामाजिक जीवन में उसका प्रभाव पड़ने लगा। महाराष्ट्र में लोकमान्य तिलक की अगुवाई में हिन्दू राष्ट्रीय आंदोलन का जन्म हुआ। शिवाजी उत्सव, गणपति पूजा आदि को मुद्दा बनाकर हिन्दूवादी चेतना को जगाया गया। गोरक्षिणी सभा का भी काम शुरू हुआ। उन्हीं दिनों मुसलमानों में

धर्म के नाम पर गो वध करना और हिन्दुओं में धर्म की रक्षा के लिए गाय को बचाना, झगड़े का कारण बन गया। इस कारण गाय को मारने और उसे बचाने के सवाल पर दोनों धर्मों के बीच खून-खराबा होने लगा, जिससे काफी लोगों की जानें गईं। लेकिन रवीन्द्रनाथ ने उम्मीद नहीं छोड़ी थी। उन्होंने कहा था कि इन घटनाओं से खासकर हिन्दुओं के सभी वर्गों के बीच आपस में एकजुटता बढ़ेगी।

पिछली सदी के आखिरी दशक में बंगीय साहित्य परिषद की शुरूआत हुई। उसी साल रवीन्द्रनाथ और कवि नवीनचंद्र सेन सहकारी सभापति बनाए गए। इसी समय उन्होंने देश के लोक साहित्य को



इकट्ठा करने और उस पर कुछ खोज कार्य करने के लिए पढ़े-लिखे लोगों से निवेदन किया। उन्होंने इसे लेकर "साधना" पत्रिका में कई लेख लिखे। इसी समय वे खुद भी बांग्ला लोकोक्ति तथा लोकगीत संग्रह करने में जुट गए। चैतन्य लाइब्रेरी में 'महिलाओं की लोक कविताएं' नाम से एक लेख पढ़कर उन्होंने पढ़े-लिखे लोगों का ध्यान इस ओर खींचा। लोक साहित्य की खूबी और उसकी सहजता को उन्होंने लोगों के सामने उजागर किया।

जमींदारी की देखभाल और कलकत्ता आते-जाते रहने के कारण रवीन्द्रनाथ अपनी थकान दूर करने के लिए शांतिनिकेतन के अपने दो मंजिले मकान में रहने चले गए। वहां कुछ दिन आराम करने के बाद वे कलकत्ता लौटे। उसके बाद वे "साधना" पत्रिका का काम देखने लगे। उसके अलावा उनका लेखन भी चलता रहा। "साधना" में उन्होंने काफी कहानियां और लेख लिखे। "पंचभूत की डायरी" भी लिखी। जमींदारी की देखभाल के साथ ही अपना व्यवसाय भी उन्होंने शुरू किया। जूट की खेती, गन्ना पेरने के लिए कोल्हू लगाने, भूसे की खरीद-फरोख्त आदि काम भी वे करने लगे। इसी बीच "चित्रा" कविता संग्रह की कई बेहतरीन कविताएं उन्होंने लिखीं। "उर्वशी", "विजयिनी", "स्वर्ग हड़ते विदाय" (स्वर्ग से विदा), "सिंधुपारे" (सिंधु पार में), कविताएं इन्हीं दिनों लिखी गईं। इसके अलावा उन्होंने अपनी कहानियों में जिस तरह आम लोगों के बारे में लिखा है, "चैताली" नामक कविता संग्रह में भी वैसा ही मिलता है।

सन् 1897 में राजशाही जिले के नाटोर में महाराजा जगदिनेन्द्रनाथ राय के बुलावे पर बंगीय प्रादेशिक सम्मेलन का सालाना जलसा हुआ। उसमें कांग्रेस के जाने-माने प्रतिनिधियों के अलावा ठाकुरबाड़ी के काफी लोग, जैसे कि रवीन्द्रनाथ, अवनीन्द्रनाथ वगैरह भी शामिल हुए थे।

ठाकुरबाड़ी के सत्येन्द्रनाथ को सभापति बनाया गया। उनके और डबल्यू. सी. बनर्जी जैसे प्रमुख नेताओं के अंग्रेजी भाषण पर दर्शकों में बैठे रवीन्द्रनाथ ने विरोध करते हुए उनसे बांग्ला में बोलने के लिए कहा। जलसे के दौरान जर्बदस्त भूकंप आने से हड़कंप मच गया। नेता लोग अपनी जान बचाकर वहां से लौट आए। मगर वह जुलूस बांग्ला भाषा के दावे के कारण यादगार बन गया।

सन् 1898 में "भारती" पत्रिका के संपादन का भार रवीन्द्रनाथ पर पड़ा। इसी बीच वे "चित्रांगदा", "गांधारीर आवेदन" (गांधारी का निवेदन) "नरकवास", "लक्ष्मीर परीक्षा" (लक्ष्मी की परीक्षा) आदि कविताएं लिख चुके थे। "भारती" के कारण रवीन्द्रनाथ का लिखना भी ज्यादा बढ़ गया। और उसके लिए कहानी, कविता, लेख सभी कुछ लिखना पड़ा। उन्हीं दिनों महाराष्ट्र में प्लेग फैल गया। क्रांतिकारी चापेकर भाइयों ने अंग्रेज प्लेग अधिकारी और मजिस्ट्रेट की गोली मारकर हत्या कर दी। बाल गंगाधर तिलक गिरफ्तार हुए। रवीन्द्रनाथ ने इसके विरोध में टाउनहाल की एक बड़ी जनसभा में "कंठरोध" नाम से अपना तीखा लेख पढ़ा। तिलक महाराज के साथ कवि की खूब पटती थी। तिलक चाहते थे कि रवीन्द्रनाथ विलायत जाकर भारत की आजादी के बारे में लोगों को बताएं। दोनों कभी राजनैतिक विचारों में एक दूसरे के काफी करीब थे। कुछ दिनों के बाद ढाका में हुए प्रदेश सम्मेलन में रवीन्द्रनाथ ने एक गीत सुनाया। इसमें साथ ही सभापति रेवरेंड कालीचरण बंधोपाध्याय के अंग्रेजी भाषण का बांग्ला में अनुवाद भी किया।

प्रेसीडेंसी कालेज के भौतिक शास्त्र के अध्यापक जगदीशचंद्र बोस से रवीन्द्रनाथ की दोस्ती थी, उन्हीं के अनुरोध से त्रिपुरा के महाराजा राधा किशोर माणिक्य ने, जगदीशचंद्र बोस को विलायत में अपना

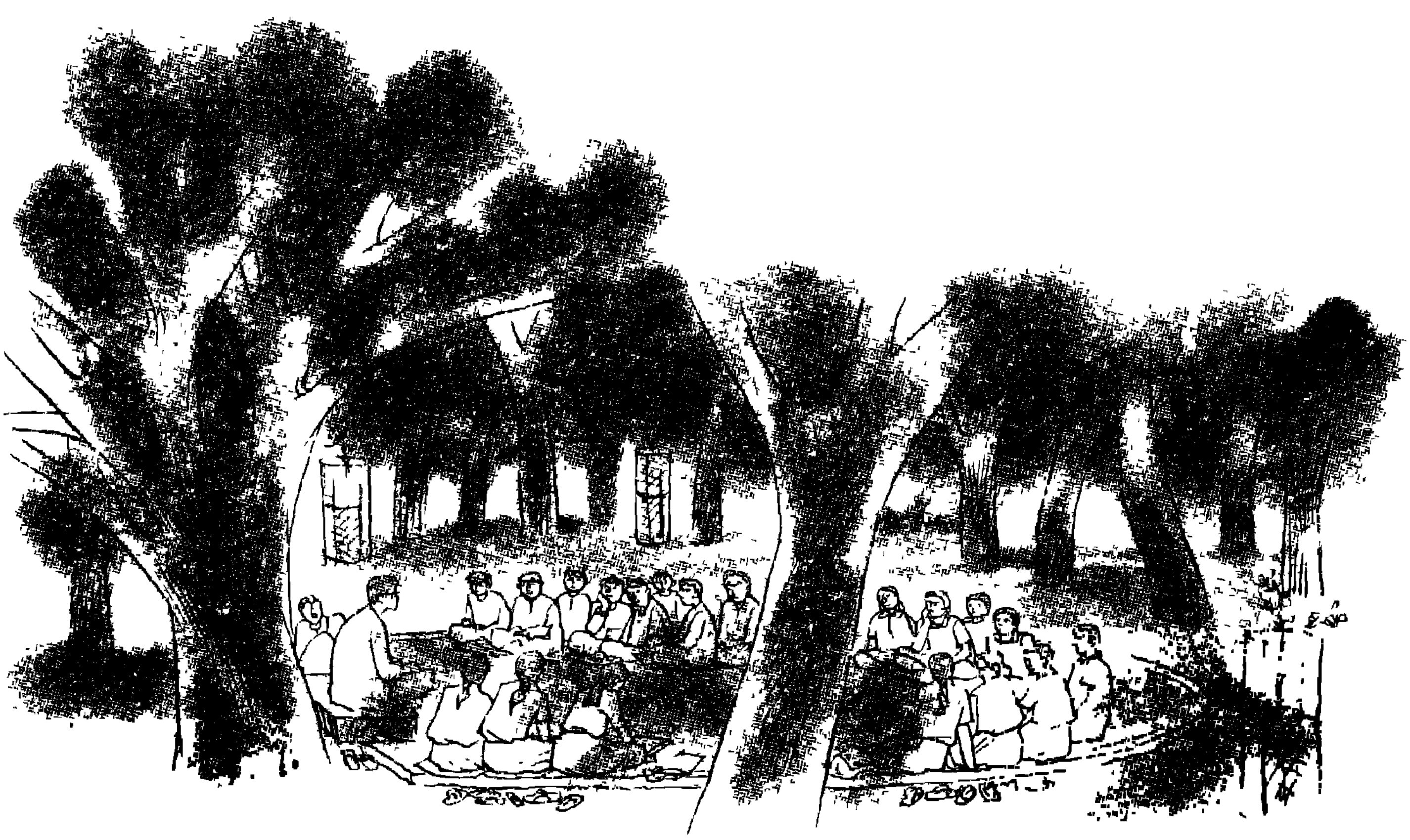
शोध कार्य जारी रखने के लिए, धन से मदद की थी। सन् 1901 से बंकिमचंद्र द्वारा शुरू किए गए "बंगदर्शन" को नए सिरे से प्रकाशित किया जाने लगा। इसका सम्पादक रवीन्द्रनाथ को बनाया गया। उसी में वे "चोखेर बाली" (आंख की किरकिरी) नामक उपन्यास धारावाहिक लिखने लगे। वह बांग्ला साहित्य का पहला मनोवैज्ञानिक उपन्यास था। इसके बाद ही रवीन्द्रनाथ ने "नष्टनीड़" नामक एक असाधारण कहानी लिखी। 'नैवेद्य' नामक भक्ति रस से भरपूर कविताएं भी इसी बीच लिखी गई।

कलकत्ता वापस लौटकर उन्होंने बड़ी बेटी माधुरी लता और संझली बेटी रेणुका की शादी कर दी। इसके बाद रवीन्द्रनाथ सपरिवार शांतिनिकेतन चले गए। दिसम्बर सन् 1901 (बांग्ला 7 पौष 1308) को बोलपुर ब्रह्मचर्याश्रम की शुरूआत हुई। वहां पढ़ाने के लिए शिलाईदह ठाकुरबाड़ी के कई अध्यापक और ब्रह्मबांधव उपाध्याय तथा एक सिंधी युवक रेवाचंद भी आए। शुरू-शुरू में कुल पांच छात्र थे, जिनमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा संतोषचन्द्र मजुमदार प्रमुख थे। ब्रह्मबांधव उपाध्याय ने रवीन्द्रनाथ को "गुरूदेव" कहना शुरू किया, बाद में इसे महात्मा गांधी ने लोकप्रिय बनाया। ब्रह्मबांधव के चले जाने के बाद मनोरंजन बंद्योपाध्याय हेडमास्टर बनकर आए। प्राचीन तपोवन के आदर्श पर बिना वेतन लिए आश्रम विद्यालय का काम शुरू हुआ। आश्रम में रहने वाले छात्रों के लिए सिर मुड़ाना, नंगे पैर रहना और शाकाहारी होना जरूरी था।

बोलपुर ब्रह्मचर्याश्रम का खर्च शुरू में रवीन्द्रनाथ ने अपनी पत्नी के गहने बेचकर चलाया था। मृणालिनी देवी इस आश्रम की माताजी थीं। उन्होंने सभी छात्रों की देखभाल, खाने-पीने का भार खुद उठा लिया। अचानक वे बेहद बीमार पड़ गई। उन्हें लेकर रवीन्द्रनाथ

कलकत्ता चले गए। लेकिन एक दिन मृणालिनी देवी जोड़ासांको ठाकुरबाड़ी की माया-ममता को छोड़कर इस दुनिया से चली गई। अपनी पत्नी के न रहने पर कवि ने उनकी याद में कई कविताएं लिखीं। वे सब "स्मरण" नामक कविता पुस्तक में शामिल हैं। कुछ दिनों के बाद संझली बेटी रेणुका की भी मृत्यु हो गई। जब रवीन्द्रनाथ रेणुका को लेकर कुछ दिनों तक अल्मोड़ा में थे, तब बच्चों की कुछ कविताएं वहां उन्होंने लिखी थीं। उसी के साथ वे "बंग दर्शन" के लिए भी "नौका डूबी" उपन्यास धारावाहिक रूप से लिख रहे थे।

शांतिनिकेतन में अपने नए विद्यालय को लेकर रवीन्द्रनाथ को बेहद चिंता रहती थी। वहां के हेडमास्टर के रूप में वे मोहितचंद्र सेन को ले आए। धीरे-धीरे छात्रों की तादाद बढ़ रही थी। मोहितचंद्र सेन की तबीयत खराब हो जाने के कारण वे वहां से चले गए। उनकी जगह भूपेन्द्रनाथ सन्याल आए। उन्होंने कुछ दिनों तक वहां का काम संभाला। लेकिन वे भी वहां ज्यादा दिन नहीं रहे। इसी तरह रवीन्द्रनाथ



के विद्यालय का काम चलता रहा। धीरे-धीरे अध्यापक के रूप में विधुशेखर शास्त्री, क्षितिमोहन सेन, कालीमोहन घोष, सी. एफ. ऐंड्रूज, विली पियर्सन, असित हालदार, नंदलाल बसु, नेपालचंद्र राय और दिनेन्द्रनाथ ठाकुर शांतिनिकेतन पहुंचे। इसके बाद पढ़ाई, चित्रकला और संगीत शिक्षा में नाम हो जाने के कारण आश्रम की स्थिति सुधर गई। सन् 1921 में यह आश्रम 'विश्वभारती' बन गया। देश-विदेश के नामी विद्वान वहां आने लगे। सिल्वां लेवी, विंटरनित्स, स्टेन, कोनो वेनोआ, बगदानफ तुच्ची आदि विदेशी विद्वान अतिथि अध्यापक होकर वहां आए। सन् 1941 में कवि की मृत्यु के बाद भी यह विश्वविद्यालय गौरव के साथ आगे बढ़ रहा है। सन् 1951 में मौलाना आजाद और जवाहर लाल नेहरू की कोशिशों से इसकी सारी जिम्मेदारी भारत सरकार ने ले ली। अपनी मृत्यु से पहले महात्मा गांधी ने भी उन्हें ऐसा करने की सलाह दी थी।

तीन

इस सदी के आरंभिक दौर में लौटा जाए। सन् 1904 में भारत के बड़े लाट लार्ड कर्जन थे। उन्होंने बंगाल को दो हिस्सों में बांट दिया। यह बंटवारा धर्म के नाम पर किया गया था। बंगाल में इसका विरोध शुरू हुआ। रवीन्द्रनाथ ने भी आगे बढ़कर हिस्सा लिया। उन्होंने "स्वदेशी समाज" नाम से अपना भाषण पढ़ा। उन्होंने कहा, "हमें गांवों की ओर देखने की जरूरत है, वहां पर देश के प्राण बसते हैं। हमें अपने गांवों को बचाना होगा। वहां एकता की भावना पैदा करनी होगी।

सन् 1905 में महर्षि देवेन्द्रनाथ चल बसे। उनकी उम्र भी हो गई थी। उनकी मृत्यु के बाद जोड़ासांको के ठाकुरबाड़ी की एकता कमजोर

पड़ने लगी। द्विजेन्द्रनाथ हमेशा के लिए शांतिनिकेतन में रहने चले गए। सत्येन्द्रनाथ पहले ही अलग हो चुके थे। ज्योतिरिन्द्रनाथ कुछ दिनों के बाद रांची चले गए। वहां मोरावादी पहाड़ पर बने अपने मकान में रहने लगे। रवीन्द्रनाथ का अधिकतर समय शांतिनिकेतन में ही बीतता था। बीच-बीच में वे जोड़ासांको और शिलाईदह हो आते थे।

इधर भारत सरकार की एक विज्ञप्ति के अनुसार 16 अक्टूबर 1905 को बंगाल के बंटवारे की घोषणा कर दी गई। रवीन्द्रनाथ ने उसके विरोध में एक गीत लिखा-

बंगाल की माटी, बंगाल का जल
बंगाल की वायु, बंगाल का फल
पूर्ण हो, पूर्ण हो,
पूर्ण हो, हे भगवान!

रवीन्द्रनाथ ने "बंगदर्शन" में लिखा- "आगामी 30 आश्विन (बांग्ला संवत् 1312) को बांग्लादेश का कानूनन बंटवारा हो जाएगा। लेकिन भगवान ने बंगालियों को बांटा नहीं है, इसी को खासतौर पर याद करने और इसे जताने के लिए उस दिन हमलोग रक्षाबंधन मनाएंगे, जिसमें सभी लोग एक दूसरे की कलाई में पीले रंग का धागा बांधेंगे। रक्षाबंधन का नारा होगा- 'भाई-भाई एक ठांई' (ठांई-जगह, घर)।

कलकत्ता के जलसे में रवीन्द्रनाथ शामिल थे। वे जुलूस में सबसे आगे थे और सभी की कलाइयों में राखी बांध रहे थे। इसी समय फेडरेशन हॉल की नींव भी रखी गई। रवीन्द्रनाथ का लिखा यह गीत गाते हुए जुलूस निकला-

विधाता के बंधन को तोड़ोगे तुम
ऐसे हो शक्तिमान,

हमारे भाग्य विधाता बनने का
तुममें ऐसा है अभिमान!

इसके बाद सिर्फ गीत या जुलूस नहीं, सभी प्रकार की विलायती चीजों का बॉयकाट शुरू हो गया। अंग्रेज सरकार ने एक आदेश जारी करके स्कूल-कालेज के छात्रों को इस स्वदेशी आंदोलन में भाग लेने से रोकना चाहा। जनता ने एक सभा में फैसला किया कि लोग सरकारी विश्वविद्यालय और सरकारी नौकरी छोड़ दें। बंगाल में आंदोलन फैल गया, हर जगह बॉयकाट शुरू हुआ। पूरा बंगाल बेहद नाराज था। उसी समय सरकारी शिक्षा का विरोध जताने के लिए डॉन सोसाइटी के प्रयासों से राष्ट्रीय विद्यालय शुरू हुए- जादवपुर विश्वविद्यालय इसी का फल है। लोगों के जबर्दस्त विरोध, आंदोलन और बहिष्कार के कारण आखिरकार सरकार को मजबूरन बंगाल का बंटवारा रद्द करना पड़ा। राष्ट्रीय शिक्षा परिषद में रवीन्द्रनाथ ने अपने कई भाषणों में लोगों को बताया कि हमारे देश की सही शिक्षा नीति कैसी होनी चाहिए। इसी बीच रवीन्द्रनाथ अगरतला, कुमितला और बरीसाल घूम आए। वहां उन्होंने भाषण भी दिए।

रवीन्द्रनाथ शांतिनिकेतन लौटे। उन्होंने अपने बेटे रथीन्द्रनाथ को कृषि विज्ञान पढ़ाने के लिए अमरीका भेजा। छोटी बेटी मीरा की शादी नगेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय से कर दी। शादी के बाद वे अपनी बेटी और दामाद के साथ दामाद के जिले बरीसाल घूम आए। इसके बाद उन्होंने अपने छोटे दामाद को भी अमरीका कृषि विज्ञान पढ़ने भेजा। इसी तरह अपने दोस्त श्रीशचंद्र मजुमदार के बेटे संतोषचंद्र मजुमदार को भी गो पालन की पढ़ाई के लिए अमरीका भेजा। अमरीका से वापस लौटने के बाद उन्होंने रथीन्द्रनाथ की शादी एक बाल विधवा प्रतिभा देवी से कर दी। रथीन्द्रनाथ को उन्होंने जमींदारी की देखभाल के लिए भेज

दिया। जहां प्रजा के हित के लिए पिता के कहने पर खेतों में उन्होंने ट्रैक्टर भी चलाया।

रवीन्द्रनाथ अपना लेखन लगातार जारी रखे हुए थे। वे कविताएं और लेख तो लिख ही रहे थे, इसके अलावा उन्होंने "प्रवासी" पत्रिका के लिए "मास्टर मोशाय" (मास्टर जी) नाम से एक बड़ी कहानी भी लिखी। कुछ दिनों बाद उन्होंने "गोरा" उपन्यास धारावाहिक रूप से लिखना शुरू किया।

इधर देश की राजनीतिक समस्या बढ़ती जा रही थी। कवि से चुप बैठते नहीं बना। हिन्दू-मुसलमानों के बीच दंगे बढ़ने लगे। रवीन्द्रनाथ ने "प्रवासी" में "रोग और निदान" नामक एक लेख में लिखा - "आज हिन्दू, मुसलमान को प्रेम की नजरों से देखना पसंद नहीं कर रहा है, उधर मुसलमान भी हिन्दुओं पर भरोसा करने से हिचक रहे हैं। यह जो एक दूसरे के प्रति अनादर और अविश्वास पैदा हुआ है, यही हमारे जीवन का सबसे बड़ा संकट बन गया है।" रवीन्द्रनाथ ने सवाल किया, 'स्वदेश को किसके हाथों से आजाद कराना है?' देश के भीतर भी तरह-तरह के झगड़े-झंझट चल रहे थे। रवीन्द्रनाथ ने इस माहौल से अपने को दूर ही रखा।

वे गांवों को सुधारने के काम में जुट गए। शिलाईदह उनकी प्रधान कर्मभूमि बनीं। उन्होंने लिखा है - "मैं इन दिनों गांव समाज की बेहतरी के लिए जुटा हुआ हूं। अपनी जमींदारी को मैं गांव सुधार के उदाहरण के रूप में दिखाना चाहता हूं। मैंने अपना काम शुरू कर दिया है।" ऐसा ही था भी। वे गांव के लोगों के साथ सड़क बनाने, तालाब ठीक करने, जंगल साफ करने आदि तरह-तरह के कामों में जुट गए। उन्होंने एक पत्र में लिखा - "मैं गांवों में सचमुच के स्वराज की स्थापना करना चाहता हूं। जो पूरे देश में होना चाहिए, उसी का

एक ढांचा यहां तैयार कर रहा हूं।"

रवीन्द्रनाथ जब गांव सुधार के काम में जुटे थे, उन्होंने अखवारों में पढ़ा कि सन् 1907 के दिसम्बर में सूरत कांग्रेस में काफी गड़बड़ी होने के कारण महासभा रद्द करनी पड़ी। रवीन्द्रनाथ सूरत का समाचार पढ़कर बहुत परेशान हुए। उन्होंने दोनों गुटों की बातें जानकर "प्रवासी" पत्रिका में 'यज्ञभंग' नाम से एक लेख लिखा। मध्यपंथियों और चरमपंथियों के आपसी झगड़े की उन्होंने निंदा की। उन्होंने लिखा कि सभा या जुलूस से ज्यादा जनता को जोड़ना जरूरी है। दोनों ही गुटों के गुस्से के कारण 1910 को पावना में होने वाले बंगीय प्रादेशिक सम्मेलन के सभापति पद को लेकर झगड़ा और बढ़ गया। लोगों के काफी कहने पर आखिरकार रवीन्द्रनाथ सभापति बनने को तैयार हुए। इस सम्मेलन में रवीन्द्रनाथ ने बांग्ला में अपना भाषण पढ़ा। अब तक जितने भी सभापति हुए थे, सब अपना भाषण अंग्रेजी में पढ़ते आए थे। हालांकि इस सम्मेलन में लोगों को उनका भाषण खास पसंद नहीं आया, क्योंकि उस भाषण में उन्होंने कई चीजों के प्रति अपना विरोध प्रकट किया था।

इसी समय गरमपंथियों ने भी अपनी कार्रवाई तेज कर दी। खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी नामक दो युवकों ने मुजफ्फरपुर के मजिस्ट्रेट किंग्सफोर्ड की हत्या करने की बजाय गलती से बैरिस्टर केनेडी की पत्नी और उनकी बच्ची को बम से उड़ा दिया। इस खवर से पूरे देश में खलबली मच गई। इस घटना के कुछ दिन वाद ही मानिकतला के एक उजड़े बगीचे में बम का एक कारखाना पकड़ा गया। इन सारी घटनाओं से दुःखी होकर रवीन्द्रनाथ ने "पथ और पाथेय" नामक लेख चैतन्य पुस्तकालय में पढ़ा। वे हत्या के रास्ते को समस्या के समाधान का ठीक रास्ता नहीं मानते थे। उन्होंने इस लेख

में कहा था - "असल में बंगाली जाति ने अपने कायर होने की बात बहुत दिनों से सिर झुकाकर स्वीकार कर रखी है, शायद इसीलिए वर्तमान घटना के बारे में सही-गलत, हित-अहित का विचार न करने अपने कायर होने के अपमान को मिटाने की भावना से बंगाली बहुत खुश हो रहे हैं।"

सन् 1908 में शांतिनिकेतन में ऋतुओं पर मेले शुरू हुए। पर्जन्य महोत्सव, जो बाद में वर्षा मंगल में बदल गया, और शरद उत्सव। जब कवि अपने शांतिनिकेतन के विद्यालय के काम में बेहद मशगूल थे, ऐसे समय अचानक एक झमेला खड़ा हो गया। खुलना के मजिस्ट्रेट की अदालत से उनके नाम गवाही के लिए एक सम्मन आया।

खुलना के सेनहाटी राष्ट्रीय विद्यालय के एक अध्यापक हीरालाल सेन ने अपनी "हुंकार" नामक कविता की किताब रवीन्द्रनाथ के नाम भेंट की थी। उस किताब से सरकार की नाराजगी और उसमें रवीन्द्रनाथ का नाम छपा होने के कारण कवि को खुलना की अदालत में गवाही के लिए जाना पड़ा।

इसके बाद रवीन्द्रनाथ ने 'प्रायश्चित' नाम से एक नाटक लिखा। जसोर के राजा प्रतापादित्य उस नाटक के नायक थे। मगर रवीन्द्रनाथ ने उसमें धनंजय वैरागी नामक एक पात्र के जरिए उस नाटक को यादगार बना दिया। धनंजय वैरागी का चरित्र बाद के गांधीजी जैसा ही है। इस नाटक में कवि ने लगान न देने के आंदोलन को तथा अहिंसा को प्रमुखता दी थी, जिसे बाद में गांधी जी ने भी आंदोलन का रूप दिया। धनंजय वैरागी अहिंसा का समर्थक था। रवीन्द्रनाथ बहुत दिनों से कह रहे थे कि भारतवर्ष के जो असली नेता होंगे वे सर्वत्यागी संन्यासी ही होंगे। उनकी यही भावना धनंजय वैरागी में नजर आई थी। बाद में "मुक्तधारा" नाटक में भी यही बात रवीन्द्रनाथ ने दूसरे रूप

में लिखी। धनंजय वैरागी का चरित्र इस नाटक में भी है।

"गोरा" उपन्यास खत्म होने के बाद रवीन्द्रनाथ ने "गीतांजलि" लिखना शुरू किया। इस समय शांतिनिकेतन में कवि के पच्चास साल पूरे कर लेने की खुशी में जलसा हुआ। उन्हीं दिनों "राजा" नाटक भी लिखा गया। इस नाटक को नौ साल बाद दुबारा मंच के लायक बनाकर उसका नाम "अरूप रतन" रखा गया। इसके बाद "अचलायतन" नाटक लिखा गया। "जीवन स्मृति" नाम से उन्होंने आत्मकथा भी लिखी। उस समय वे खूब लिख रहे थे। कुछ दिनों के बाद उन्होंने एक नया सांकेतिक नाटक "डाकघर" लिखा। उन्हीं दिनों "जन गण मन अधिनायक" गीत लिखा गया। जिसे सन् 1911 में कलकत्ता कांग्रेस में गाया गया। अगले साल "ब्रह्मोत्सव" में भी यही गीत गाया गया।

इन सब कामों के बीच अपनी जमींदारी में किसानों की बेहतरी के लिए भी वे चिंता कर रहे थे। उनके काम और चिट्ठियां इसकी गवाह हैं। उन्होंने शिलाईदह से अपने बेटे रथीन्द्रनाथ को एक चिट्ठी में लिखा - "बोलपुर में एक चावल की मशीन चल रही है। ऐसी ही एक मशीन वहां भी उपयोगी होगी। यह अंचल तो धान का ही है। बोलपुर से ज्यादा धान की पैदावार यहां होती है। मेरी इच्छा है कि 5-10 रूपये चंदा करके यहां के अधिकतर किसान मिलकर अगर इस मशीन को लगा लें तो उनमें आपस में मिलजुल कर काम करने की असली भावना पैदा होगी।" रवीन्द्रनाथ ने इस पत्र में किसानों के लिए कुटीर शिल्प को भी जरूरी बताया था। उन्होंने उन्हें पॉटरी और छाता तैयार करने की विधि सिखाने की भी कोशिश की। इसके अलावा पतिसर कृषि बैंक खोलकर किसानों के लिए आसान दरों पर ब्याज पर रूपये लेने का भी उन्होंने इंतजाम किया।

चार

रवीन्द्रनाथ ने विलायत जाने की पूरी तैयारी कर ली। जहाज में जाने के दौरान वे "गीतांजलि", "गीतिमाला" आदि कविताएं चुनकर उनका अंग्रेजी में अनुवाद करने लगे। वे पोर्ट सैयद पहुंचे। वहां से फ्रांस के भार्सई बंदरगाह। उसके बाद पेरिस। पेरिस में एक दिन रहकर वे लंदन रवाना हुए। उनके साथ उनके पुत्र रथीन्द्रनाथ और पुत्रवधू प्रतिभा देवी थीं। वे एक होटल में ठहरे। रवीन्द्रनाथ बाईस साल बाद लंदन पहुंचे थे। इस बीच शहर काफी बदल चुका था। उसकी व्यस्तता, गाड़ी-घोड़ों की बढ़ती भीड़ आदि ने रवीन्द्रनाथ को प्रभावित ही किया।

रवीन्द्रनाथ जब इंग्लैंड पहुंचे तब उनके पहले के परिचित काफी बंगाली छात्र वहां पर थे। उनमें सुकुमार राय, कालीमोहन घोष, केदारनाथ चट्टोपाध्याय, अवनीन्द्र मोहन बोस आदि मुख्य थे। इसके अलावा पी. सी. राय, डा. देव प्रसाद सर्वाधिकारी, ब्रजेन्द्रनाथ शील, प्रमथलाल सेन आदि भी वहां थे। रवीन्द्रनाथ होटल छोड़कर हैम्पस्टेड हीथ में एक किराये का मकान लेकर बेटे-बहू समेत वहां रहने लगे। वे पहले से परिचित एक ब्रिटिश कलाकार रोटेनस्टाइन से मिलने गए। वे कुछ समय पहले जोड़ासांको में गगनेन्द्रनाथ तथा अवनीन्द्रनाथ के मेहमान भी रहे थे। रवीन्द्रनाथ अंग्रेजी 'गीतांजलि' की पांडुलिपि पढ़ने के लिए उन्हें दे आए। उन्होंने प्रसिद्ध कवि यीट्स को भी अपनी पांडुलिपि पढ़ने के लिए दी।

थोड़े दिनों में ही इंग्लैंड के कई साहित्यकारों और विद्वानों से उनका परिचय हुआ। 12 जुलाई सन् 1912 को रवीन्द्रनाथ की एक सम्मान सभा में कवि यीट्स सभापति बने। उन्होंने अपना भाषण खत्म करते हुए कहा, "रवीन्द्रनाथ के लगभग सौ गीतों के गद्य अनुवादों की

एक पांडुलिपि मैं हमेशा साथ लिए रहता हूं। अपने समकालीन किसी और लेखक की ऐसी किसी अंग्रेजी रचना के बारे में मैं नहीं जानता, जिसके साथ इन कविताओं की तुलना की जा सके।"

रवीन्द्रनाथ की उस समय के इंग्लैंड के विद्वानों से जान-पहचान बढ़ी। चार्ल्स एंड्रूज और विली पियर्सन तो थे ही, यीट्स और रोटेनस्टाइन के अलावा बर्टेन्ड रसेल, एच. जी. वेल्स, लोयेस डिकिन्सन, स्टेपफोर्ड ब्रुक्स, अर्नस्ट रीह्स, एवलिन अंडरहिल, फॉक्स स्ट्रांगवेज, एजरा पाउंड आदि वरिष्ठ और युवा मनीषी वहां थे। ट्रकेडोरा होटल में रवीन्द्रनाथ के सम्मान में एक सभा हुई। इंडिया सोसाइटी ने "गीतांजलि" को अंग्रेजी में छापना तय किया। यीट्स ने उसकी भूमिका लिखी।

इंग्लैंड में चार महीने रहने के बाद रवीन्द्रनाथ अपने बेटे और बहू को लेकर अमरीका गए। न्यूयार्क से सीधे इलिनॉय के अर्बाना शहर में। रथीन्द्रनाथ ने वहीं अपनी पढ़ाई की थी। रवीन्द्रनाथ ने वहां के विद्वानों के निवेदन पर कई जगह भाषण भी दिया। बाद में अर्बाना से शिकागो गए। वहां से रोचेस्टर। वहां पर रवीन्द्रनाथ ने "जाति संघर्ष" विषय पर एक भाषण दिया। वे रोचेस्टर से बोस्टन और वहां से हार्वर्ड पहुंचे। अंत में न्यूयार्क से शिकागो होकर अर्बाना आए। रवीन्द्रनाथ अमरीका में छः महीने रहे। वहां पर उन्हें अंग्रेजी में "गीताजंलि" के छप जाने की खबर मिली।

विलायत पहुंचकर उन्होंने देखा कि हर अखबार में "गीतांजलि" की तारीफ छपी थी। उन्हें कैक्सटन हाल में कई बार भाषण देना पड़ा। उन भाषणों को एकत्र करके अंग्रेजी में "साधना" नाम से एक किताब छपी। विलायत में रहने के दौरान ही "डाकघर" और "राजा", इन दोनों नाटकों के "पोस्ट मास्टर" तथा "द किंग आफ द डार्क चेम्बर"

के नाम से अनुवाद छपे। इन पर नाटक भी खेले गए।

शांतिनिकेतन लौटने के बाद 25 नवम्बर 1913 को उन्हें खबर मिली कि उन्हें साहित्य का नोबल पुरस्कार मिला है। देश में खुशी की लहर दौड़ गई। शांतिनिकेतन में उत्सव का माहौल छा गया। किसी भारतीय को पहली बार यह इनाम मिला था। पूरे एशिया में वही पहले व्यक्ति थे। कलकत्ता से नामी-गिरामी लोग शांतिनिकेतन पहुंचकर उन्हें बधाई देने लगे। बंगाल के कवि को विश्व कवि बनने का गौरव मिला था। लेकिन उस दिन आम्रकुंज में कवि का भाषण बहुतों को पसंद नहीं आया। कुछ दिन पहले जो लोग उनकी बढ़-चढ़कर आलोचना करते थे, उनमें से कुछ को सामने पाकर उन्होंने कहा, "इस सम्मान



मदिरा को मैंने अपने होठों से लगा जरूर लिया है, लेकिन मैं इसका भरपूर आनंद नहीं ले पा रहा हूं।"

ठीक उन्हीं दिनों दक्षिण अफ्रीका में वहां रहने वाले भारतीयों पर होने वाले अत्याचारों को रोकने के लिए डरबन में बैरिस्टर मोहनदास कर्मचंद गांधी सत्याग्रह आंदोलन चला रहे थे। वहां के हालात को अपनी आंखों से देखने के लिए एंड्रूज और पियर्सन जा रहे थे। रवीन्द्रनाथ ने एंड्रूज को एक पत्र में लिखा - "आप गांधी जी तथा दूसरे साथियों के साथ अफ्रीका में हमारी ओर से लड़ रहे हैं।" गांधी जी का इसी चिट्ठी में कवि ने पहली बार जिक्र किया था। बाद में दोनों के संबंध हमेशा के लिए गहरे बन गए।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के आशुतोष मुखोपाध्याय की अगुवाई में कवि को सम्मानित करने का फैसला किया गया। उन्हें डी. लिट. की उपाधि दी गई। प्रमथ चौधुरी ने सन् 1914 में "सबुजपत्र" नाम से आम बोलचाल की भाषा में एक मासिक पत्रिका निकाली। रवीन्द्रनाथ उसमें लिखने लगे। इसी के बाद रवीन्द्रनाथ की सभी गद्य रचनाएं आम बोलचाल की भाषा में ही लिखी जाने लगीं। रवीन्द्रनाथ साहित्य में भी उनकी कविता की पुस्तक "बलाका" से नए युग की शुरूआत हुई। उनका "घरे बाइरे" (घर बाहर) उपन्यास भी उन्हीं दिनों छपा।

सन् 1914 में विश्वयुद्ध छिड़ गया। इस खबर से रवीन्द्रनाथ बहुत परेशान हुए। शांतिनिकेतन के मंदिर में साप्ताहिक प्रार्थना सभा में उन्होंने कहा, "इस दुनिया में पाप के खून से रंगी जो भयानक मूरत नजर आने लगी है, उस विश्व पाप को हमें खत्म करना होगा।"

शांतिनिकेतन में कवि का मन लग नहीं रहा था। विद्यालय को चलाने के बारे में अध्यापकों के रवैये से वह बहुत दुःखी थे।

कवि को एंड्रूज के जरिए खबर मिली कि गांधी जी दक्षिण अफ्रीका

से अब हमेशा के लिए भारत लौटना चाहते हैं। एंड्रूज की कोशिशों से गांधी जी के फीनिक्स स्कूल के छात्रों ने शांतिनिकेतन में दाखिला लिया। यह सन् 1915 की बात है। इन छात्रों में गांधी जी के बेटे देवदास और उनके भतीजे मगनलाल भी थे। कुछ दिनों के बाद वहां गांधी जी भी कस्तूरबा गांधी के साथ पहुंचे। लेकिन जल्दी ही गांधी जी को पुणे जाना पड़ा। वहां से गोपालकृष्ण के देहांत की खबर आई थी।

उस बार रवीन्द्रनाथ से गांधी जी की भेंट नहीं हो पाई थी। उन्हीं दिनों आचार्य कृपलानी शांतिनिकेतन आए। वे उन दिनों मुजफ्फरपुर कालेज के प्रधानाचार्य और इतिहास के अध्यापक थे। बातों-बातों में उन्होंने गांधी जी से कहा, "इतिहास बताता है कि अहिंसा के रास्ते पर चलकर कभी किसी देश को आजादी नहीं मिली।" गांधी जी ने जवाब दिया था, "इतिहास लिखने का काम अभी खत्म कहां हुआ है।"

रवीन्द्रनाथ से गांधी जी की भेंट भी हुई और आपस में बातें भी। छात्रों को अपने हाथों से अपना काम करते न देखकर गांधी जी नाराज हुए। उन्होंने कहा, "अब छात्रों को सभी काम अपने हाथों से करना पड़ेगा।" रवीन्द्रनाथ ने इसका परिणाम जानते हुए भी अपनी सहमति दे दी। गांधी जी और उनके फीनिक्स स्कूल के छात्रों के साथ आश्रम के छात्र भी सब्जी काटने, बर्तन मांजने, रसोई पकाने, घर-द्वार की सफाई करने, पखाना साफ करने आदि कामों में जुट गए। गांधी जी और उनके फीनिक्स स्कूल के छात्र कुछ दिनों बाद कुंभ-मेला देखने चले गए। वहां से उनका दूसरी जगह जाने का कार्यक्रम बन गया। लेकिन इन कुछ दिनों में ही उन्होंने शांतिनिकेतन में एक नई हवा बहा दी थी। 10 मार्च 1913 को शांतिनिकेतन में पहली बार छात्रों को इस तरह का चुनौती भरा काम करना पड़ा था। इसीलिए आज भी हर साल यह दिन शांतिनिकेतन में "गांधी पुण्याह" के रूप में मनाया

जाता है। इस दिन सारे छात्रों को अपना काम अमने हाथों से करना पड़ता है।

दस बारह दिन बाद बंगाल के छोटे लाल लार्ड कारमाइकल शांतिनिकेतन में आए। कुछ समय पहले सभी सरकारी कर्मचारियों के घरों में एक सरकारी सूचना पहुंची थी कि वे अपने बच्चों का दाखिला शांतिनिकेतन में न करवाएं। रवीन्द्रनाथ के नोबल पुरस्कार मिलने के बाद इस सरकारी सूचना को रद्द करके खुद छोटे लाट शांतिनिकेतन पहुंचे। आम्रकुंज के नीचे एक नया चबूतरा बनाकर कारमाइकल साहब को सम्मानित किया गया। आज भी वह चबूतरा "कारमाइकल वेदी" के नाम से जाना जाता है।

इस बीच रवीन्द्रनाथ ने "चतुरंग" नामक उपन्यास लिखा। उन्हीं दिनों साहित्य में सच के सवाल पर विपिनचन्द्र पाल ने रवीन्द्रनाथ के साहित्य की आलोचना की। अजित कुमार चक्रवर्ती, प्रमथ चौधुरी आदि ने उसका जवाब दिया। रवीन्द्रनाथ की प्रसिद्ध कहानी "स्त्रीर पत्र" (स्त्री का पत्र) नकली सच्चाई पसंद लोगों को पसंद नहीं आई थी। विपिनचंद्र पाल ने "मृणालेर पत्र" (मृणाल का पत्र) नाम से एक जवाबी कहानी लिखी। विपिनचंद्र पाल का साथ दिया गिरिजा शंकर राय चौधुरी ने। चितरंजन दास की "नारायण" पत्रिका में भी रवीन्द्रनाथ लिखते रहे।

3 जून 1915 को रवीन्द्रनाथ को "सर" की उपाधि प्रदान की गयी। यह एक बड़ी घटना थी। कवि उन्हीं दिनों कश्मीर की सैर पर गये थे। वहां वे कुछ दिन शिकारे में रहे। "बलाका" की प्रसिद्ध कविता सांझ के समय झिलमिलाते झेलम का बंकिम प्रवाह वहीं पर लिखी गयी थी। शेक्सपियर की तीन सौंवी जयंती के अवसर पर भी उन्होंने एक कविता लिखी। कश्मीर से लौटते ही वे शिलाईदह चले गए। वापस

लौटकर उन्होंने अपना एक प्रसिद्ध लेख पढ़ा - "शिक्षार वाहन" (शिक्षा का माध्यम) उसमें उन्होंने कहा, "मातृभाषा मां के दूध के समान हैं।"

कवि की बहुत दिनों से जापान जाने की इच्छा थी। वे सन् 1916 में एक जापानी जहाज से रवाना हुए। उनके साथ एंड्रूज, पियर्सन और मुकुल देव भी थे। वे रंगून, पेनांग, सिंगापुर, हांगकांग होते हुए जापान के कोबे बंदरगाह पहुंचे। वहां से ओसाका गये, वहां भाषण भी दिया। वे टोकियो पहुंचकर अपने पहले के परिचित जापानी चित्रकार टाइकान के मेहमान बने। टाइकान कुछ दिन जोड़ासांको में भी रहे थे। इसके बाद भाषणों और सम्मान का सिलसिला शुरू हुआ। टोकियो विश्वविद्यालय में भाषण देने के बाद ही उवोनो पार्क में उनके सम्मान में एक सभा हुई। उन्होंने एक सभा में जापानियों की हमलावर नीति की निंदा भी की। जाहिर है जापानियों को उनकी यह बात पसंद नहीं आई। जापान में रहने के दौरान टोमोवादाकोरो नामक एक जापानी युवती से उनका परिचय हुआ। वह परिचय और गहरा हुआ। वे बाद में शांतिनिकेतन भी आई थीं। रवीन्द्रनाथ की प्रशंसिकाओं में उनका नाम आदर से लिया जाता है।

जापान में तीन महीने रहने के बाद रवीन्द्रनाथ अमरीका पहुंचे। वहां वे सियाटेल में ठहरे। इसके बाद पोर्टलैन्ड, सैन फ्रांसिस्को, लांस एंजेलेस, सान डियेगो आदि कई जगह उन्होंने भाषण दिया। उनके इन भाषणों की किताब "पर्सनैलिटी एंड नैशनलिज्म" (व्यक्तित्व और राष्ट्रीयता) नाम से छपी। उसके बाद वे न्यूयार्क गए वहां वे बोस्टन, येल तथा और भी कई जगह घूमने के बाद उन्होंने भारत लौटने का मन बनाया। लौटते वक्त क्लीवलेंड शहर के नागरिकों की इच्छा पर "शैक्सपियर गार्डेन्स" में उन्होंने एक पौधा लगाया। यह काम उन्होंने

पहली बार किया था। बाद में शांतिनिकेतन में पौधा लगाना तो समारोह ही हो गया। फिर वे सैन फ्रांसिस्को होते हुए होनोलूलू पहुंचे। वहां से जापान। सन् 1917 के मार्च महीने में वे भारत वापस लौटे।

कलकत्ता लौटकर उन्होंने देखा कि ठाकुरबाड़ी में "विंचित्रा" नाम से एक क्लब खुल गया था। लेकिन अपने परिवार की कई समस्याओं ने कवि को दुःखी कर दिया। उनकी सबसे बड़ी लड़की बेला की हालत बहुत खराब थी। अपने दामाद शरतचंद से रवीन्द्रनाथ की पटती नहीं थी। उधर देश का राजनीतिक माहौल बिगड़ता जा रहा था। क्रांतिकारियों के बम की आवाज चारों तरफ गूंज रही थी। ब्रिटिश सरकार ने ढेरों क्रांतिकारी युवकों को जेल में डाल दिया था। स्वराज के लिए आंदोलन भी शुरू हो चुका था। इन सभी घटनाओं से परेशान होकर रवीन्द्रनाथ सरकारी दमननीति के विरोध में अखबारों में बयान देने लगे। "कर्तार इच्छाय कर्म" (मालिक की इच्छा से कर्म) नामक एक लम्बा लेख उन्होंने राममोहन लाइब्रेरी में पढ़ा। वहां पर उनके स्वागत में "देश देश नंदित कवि" गीत भी गाया गया।

बंगाल का राजनैतिक माहौल बिगड़ता जा रहा था। एनी बेसेंट जेल में थीं। उनकी रिहाई के लिए आंदोलन शुरू हुआ। आखिरकार सरकार को उन्हें छोड़ना पड़ा। इस राजनीतिक उथल-पुथल के बीच जोड़ासांको ठाकुरबाड़ी में "डाकघर" नाटक खेला गया। नाटक के दर्शकों में गांधी जी, बाल गंगाधर तिलक, एनी बेसेंट, मदनमोहन मालवीय आदि भी थे। उन्हीं दिनों कलकत्ता विश्वविद्यालय की उन्नति के लिए सैडलर कमीशन नियुक्त हुआ। इंग्लैंड के लीड्स विश्वविद्यालय के उपकुलपति सर माइकल सैडलर ने शिक्षा को लेकर रवीन्द्रनाथ की राय पूछने पर उन्होंने एक चिट्ठी लिखी। उन्होंने कहा, "अंग्रेजी भाषा को द्वितीय भाषा के रूप में बहुत अच्छी तरह पढ़ाया जाना चाहिए।

लेकिन स्कूल कालेज से लेकर विश्वविद्यालय तक की हर विषय की पढ़ाई मातृभाषा में ही होनी चाहिए।"

सन् 1917 के अंत में उन दिनों के भारत सचिव सैमुअल मांटेग्यू स्वराज के सिलसिले में भारत आए। वे रवीन्द्रनाथ से, उनके जोड़ासांको वाले घर में आकर मिले। उन्हीं दिनों बंगाल में कांग्रेस की महासभा हुई। कवि ने पहले दिन "इंडियाज प्रेयर" (भारत की प्रार्थना) नाम से एक कविता उस महासभा में पढ़ी - "व्हेयर द माइंड इज़ विदाउट फीयर" (जहां मन में कोई भय न हो) आदि। यह कवि का "नैवेद्य" काव्य संग्रह की "चित जेथा भय शून्य" कविता का अंग्रेजी अनुवाद था। इससे पहले सन् 1886 में कलकत्ता में कांग्रेस की महासभा में उन्होंने अपना लिखा गीत- "आमरा मिलेछि आज मायेर डाके" (मां की पुकार पर हम सब एकत्र हुए हैं) खुद गाकर सुनाया था। सन् 1890 में उन्होंने बंकिमचंद्र की कविता "वंदेमातरम्" की धुन खुद बनाकर उसे गाया भी।

इसके बाद शांतिनिकेतन में अपने विद्यालय के काम में वे पूरी तौर से जुट गए। उस बार शांतिनिकेतन में काफी गुजराती छात्र आए थे। मराठी, राजस्थानी, मलयाली छात्र वहां पहले से ही पढ़ रहे थे। नए छात्रों और उनके घरवालों से बातें करके रवीन्द्रनाथ के मन में एक नई योजना ने जन्म लिया। गुजरातियों से उन्हें चंदे में कई हजार रूपए मिल गए। सातवें पौष मेले के दूसरे दिन विश्वभारती की नींव रखी गई। उसी विद्यालय के पहले छात्र, अपने बेटे रथीन्द्रनाथ, को अपनी सहायता के लिए उन्होंने कलकत्ता से वहां बुला लिया।

मैसूर सरकार के बुलावे पर कवि बंगलूर और मैसूर गए। उन्होंने दोनों ही जगह भाषण दिया। वहां से कुछ दिन आराम करने के लिए वे उटकमंड गए। उसके बाद सालेम, पालिघाट, श्रीरंगपट्टनम, तंजौर,

तिरूचिनापल्ली, कुभकोणम्, मदुरई आदि जगहों में उन्हें भाषण देने के लिए जाना पड़ा। थियोसापिस्टों के केन्द्र मदनपल्ली भी गए। उसके बाद अडियार। ऐनी बेसेंट के स्कूल में भी आचार्य के रूप में उन्होंने भाषण दिया। भाषण का विषय था - "भारतीय संस्कृति का केन्द्र।"

उन्हीं दिनों पंजाब के जलियांवाला बाग में हुई मासूम लोगों की हत्याओं की खबर उन्हें मिली। सेना के सख्त कानून के कारण इस भयानक घटना की खबर तक छापने की अनुमति नहीं दी गई। इस खबर से रवीन्द्रनाथ बेहद दुःखी हुए। उन्होंने एक चिट्ठी में उस समय लिखा, "इस दुःख के ताप से मेरी छाती जल रही है।" उन्होंने इसका विरोध करने की ठानी। उन्होंने चितरंजन दास से कहा, "एक विरोध सभा बुलाइए, मैं उसका सभापतित्व करूंगा।" मगर चितरंजन दास राजी नहीं हुए। उन्होंने गांधी जी को चिट्ठी लिखी, "आइए हम दोनों मिलकर कानून भंग करके पंजाब में घुसें।" गांधी जी भी इसके लिए तैयार नहीं हुए।

इस घटना का बोझ उनके दिल पर इस कदर बढ़ गया कि वे कई रात सो नहीं पाए। आखिरकार 19 मई 1919 को उन्होंने बड़े लार्ड चेम्सफोर्ड को चिट्ठी लिखकर जता दिया कि वे अब "सर" नहीं बने रहना चाहते। उन्होंने "सर" की उपाधि लौटा दी। उनकी लिखी वह चिट्ठी पढ़ने लायक है। कवि के मन की वेदना, उनका सारा गुस्सा उस चिट्ठी में नजर आता है। ऐसी ही एक चिट्ठी में उन्होंने लिखा था, "मेरे दुःख का सीने पर इतना ज्यादा बोझ है जिसे ढोना अब कठिन हो गया है, इसलिए इस बोझ पर इस उपाधि का भी वजन ढोना अब मेरे लिए संभव नहीं है।"

रवीन्द्रनाथ सपरिवार शिलांग गए। वहां से गुवाहाटी होकर रेलगाड़ी से सिलहट पहुंचे। वहां उनका बहुत स्वागत हुआ। वहीं पर पहली बार

मणिपुरी नाच देखकर वे बहुत प्रभावित हुए। अगरतला से शांतिनिकेतन लौटकर उन्होंने एक मणिपुरी नृत्य के गुरू को बुलाया। तभी से शांतिनिकेतन में मणिपुरी नाच सिखाना शुरू हुआ। इस तरह बंगाल की नयी हवा वे संस्कृति की दुनिया में ले आए। मणिपुरी नृत्य की शैली पर एक नया नाटक तथा उसके गीत लिखे गए। सन् 1926 में "नटीर पूजा" (नटी की पूजा) नाटक में श्रीमती के नृत्य ने भारत के नृत्य जगत को एक नई दिशा दी।

अहमदाबाद में गुजराती साहित्य सम्मेलन का सभापति बनने के लिए गांधी जी का पत्र उन्हें मिला। वे वहां अम्बालाल साराभाई के यहां ठहरे। सम्मेलन खत्म होने के बाद वे अहमदाबाद के नजदीक गांधी जी का साबरमती आश्रम देखने गए। इसके बाद वे काठियावाड़ के सफर पर निकले। वहां से वे मुंबई गए। मुहम्मद अली जिन्ना वहां के एक बड़े प्रभावशाली कांग्रेसी नेता थे। जलियांवाला बाग हत्याकांड की याद में वहां एक सभा हो रही थी। जिन्ना ने रवीन्द्रनाथ से एक भाषण लिखकर देने के लिए कहा। रवीन्द्रनाथ ने लिख दिया।

मुंबई से वे बड़ौदा पहुंचे। वहां महाराजा गायकवाड़ के अतिथि बने। वहां भी कवि को सम्मानित किया गया। मुंबई से सूरत, फिर मुंबई होते हुए कलकत्ता वापस लौटे। कवि ने हर जगह लोगों को विश्वभारती विश्वविद्यालय की स्थापना की जरूरत के बारे में जानकारी दी। गुजरात से लौटते ही उन्होंने विलायत जाने की बात सोची। तब तक पहला विश्वयुद्ध खत्म हो चुका था। यूरोप नए सिरे से खुद को ढालने के काम में जुट गया। कवि को लगा कि उन्हें अपनी इस बार की यूरोप यात्रा में उन लोगों से मिलने का मौका मिलेगा जो एक नए यूरोप को बनाने की चिंता कर रहे हैं। वे उनके नजरिए को समझना चाहते थे।

पांच

5 जून 1920 को इंग्लैंड के बंदरगाह पर उनका जहाज पहुंचा। उन्हें लेने के लिए उनके साथी पियर्सन आए थे। लंदन पहुंचने के बाद रोटेनस्टाइन वगैरह उनके कुछ खास दोस्त उनसे मिलने आए। भोजसभा, पार्टियों वगैरह का भी सिलसिला चलता रहा, लेकिन रवीन्द्रनाथ को लगा कि उनके दोस्तों के व्यवहार में थोड़ा बदलाव आ गया है। दरअसल राजभक्त अंग्रेज रवीन्द्रनाथ के "सर" की उपाधि लौटाने से खुश नहीं थे।

इंग्लैंड से रवीन्द्रनाथ फ्रांस गये। वहां पर काह्न नाम से एक बेहद अमीर कवि के वे अतिथि हुए। वहां पर सिलवां लेवी आंरि बेगम, ले ब्रन, कंतेस द नोआई जैसे नामी लोग उनसे आकर मिले। उसके बाद नीदरलैंड से बुलावा पाकर कवि वहां करीब पंद्रह दिन रहे। द हेग, ऐमस्टरडम, रोटेरडम आदि जगहों में उन्होंने भाषण दिया। इसके बाद बेल्जियम की राजधानी ब्रुसेल्स में अपना भाषण देकर वे पेरिस लौट आए।

यूरोप से कवि अमरीका आए। लेकिन उनके बारे में किसी को वहां न खुशी थी न आग्रह था। ब्रुकलिन, न्यूयार्क और हार्वर्ड में उनका भाषण जरूर हुआ, मगर आयोजकों और श्रोताओं में उनके प्रति उत्साह नजर नहीं आया। शायद इसके पीछे उनके "सर" की उपाधि वापस लौटाने का कारण रहा होगा। मगर वहां की "पोयट्री सोसाइटी" द्वारा उनके सम्मान का आयोजन किया गया। इसकी आयोजिका श्रीमती मूडी थी।

अमरीका में लेनार्ड अलम्हर्स्ट नामक एक अंग्रेज युवक से परिचय हुआ। यह बाद में और गहरा हुआ। रवीन्द्रनाथ के ग्राम सुधार कार्यक्रमों से वे प्रभावित थे। उन्होंने अपनी पत्नी की सहायता से, जो

भी संभव था, उन्हें धन देने का वादा किया। यह वादा उन्होंने जीवन भर निभाया भी। श्री निकेतन का पूरा खर्चा उन दोनों पति-पत्नी ने मरते दम तक उठाया।

अमरीका से इंग्लैंड। वहां से हवाई जहाज से पेरिस। यह रवीन्द्रनाथ का पहला हवाई सफर था। पेरिस में रहने के दौरान उनका रोम्यां रोला से परिचय हुआ, बाद में गहरी दोस्ती। इसी तरह उनका परिचय अपने काम के प्रति बेहद लगनशील तथा भावुक व्यक्ति पेट्रिक गेडिस के साथ भी हुआ।

भारत में असहयोग आंदोलन को लेकर काफी उत्तेजना थी। रवीन्द्रनाथ भारत लौटे। उन्होंने पाया कि शांतिनिकेतन भी असहयोग आंदोलन की जबर्दस्त लपेट में था। रवीन्द्रनाथ जब शांतिनिकेतन से बाहर थे, तब गांधी जी वहां आकर उनके बड़े भाई द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर के साथं विचार-विनिमय करते थे। गांधी जी से सलाह लेने प्रसिद्ध अली भाइयों में से एक शौकत अली भी आए थे। उन्हीं दिनों स्वामी श्रद्धानन्द भी वहां गए थे। लेकिन रवीन्द्रनाथ हमेशा की तरह ही उस वक्त भी यही कह रहे थे कि शांतिनिकेतन को राजनीति का अखाड़ा न बनाया जाए। हालांकि रवीन्द्रनाथ ज़ब भारत से बाहर थे तब शांतिनिकेतन में बड़ी संख्या में लोगों ने असहयोग आंदोलन में भाग लिया था। इस आंदोलन के सबसे उत्साही समर्थक खुद कवि के बड़े भाई द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर थे। रवीन्द्रनाथ ने स्कूल और कालेज के बॉयकाट का समर्थन नहीं किया। भारत लौटकर उन्होंने यूनिवर्सिटी इंस्टीट्यूट हाल में एक लेख पढ़ा। उसका विषय था "शिक्षा का मिलन" उनकी राय में यूरोप को विजय शिक्षा के बल पर ही मिली थी। शिक्षा को गालियां देते रहने में दुःख तो कम नहीं होगा, बल्कि ऐसा करने से अपराध ही बढ़ेगा।

वे इतने से ही शांत नहीं बैठे। कुछ दिन बाद उन्होंने एक और लेख लिखा। उसका नाम था "सत्य की पुकार"। उस लेख में गांधी जी के महत्व को मानने के बावजूद उनके विचारों और उनकी दिशा से रवीन्द्रनाथ ने अपनी असहमति जताई। बंगाल के लोगों को रवीन्द्रनाथ की इन बातों में कोई दम नजर नहीं आया। कुछ दिनों के बाद गांधी जी को कलकत्ता आने पर, जोड़ासांको वाले घर में, रवीन्द्रनाथ से उनकी अकेले में करीब चार घंटे तक बात हुई। उनके साथ सी. एफ. एंड्रूज भी थे। मगर उन दोनों के बीच उस दिन क्या बातें हुई इसके बारे में कभी कुछ पता नहीं चला।

राजनीतिक खींचतान से उब कर रवीन्द्रनाथ ने अब अपना सारा ध्यान कविता लिखने में लगाया। "शिशु भोलानाथ" उसी समय की लिखी कविता है। उस समय आचार्य ब्रजेन्द्रनाथ शील ने विश्वभारती की स्थापना और उसका संविधान बनाने में मुख्य भूमिका निभाई। फ्रांस से सिलवां लेवी अतिथि अध्यापक होकर आए। उन्हीं से विश्वभारती विद्या भवन का काम शुरू हुआ। उधर पूरे देश में आंदोलन जोर पकड़ रहा था। गांधी जी ने गुजरात के बारदौला में सरकार को कर न देने का आंदोलन चलाया। वह आंदोलन सफल नहीं हुआ। रवीन्द्रनाथ ने गुजराती के एक प्रसिद्ध लेखक को भेजी चिट्ठी में लिखा- "अहिंसा की विचारधारा को इस प्रकार राजनीति में प्रयोग करने के खतरे अनेक हैं। लोगों को इसके लिए पूरी तौर से तैयार न करके ऐसे आंदोलन में झोंक देना ठीक वैसा ही है, जिस तरह बिना सैनिक शिक्षा के किसी को मोर्चे पर भेज दिया जाए।"

विश्वभारती के बढ़ते हुए खर्चों से रवीन्द्रनाथ परेशान थे। भाषण देने के सिलसिले में रवीन्द्रनाथ मुंबई, पुणे और मैसूर गए। वहां से मद्रास, मंगलौर होकर श्रीलंका। वहां के लोगों से विश्वभारती के लिए

सहायता मांगते हुए वे फिर मद्रास और तिरूअनंतपुरम गए। उसके बाद मुंबई। उन्होंने पारसी समाज से विश्वभारती के लिए मदद मांगी। थोड़ी बहुत मदद मिली भी। मुम्बई से वे अहमदाबाद पहुंचकर वहां अम्बालाल साराभाई के यहां अतिथि होकर कुछ दिन रहे। गांधी जी उन दिनों जेल में थे, इसलिए दोनों में भेंट नहीं हुई। मगर रवीन्द्रनाथ साबरमती आश्रम जाना नहीं भूले।

रवीन्द्रनाथ दक्षिण भारत और उत्तर भारत से होते हुए शांतिनिकेतन लौट आए। विश्वभारती में उन दिनों एक से बढ़कर एक विदेशी अध्यापक थे। उनके कारण शांतिनिकेतन का गौरव बढ़ गया। विन्टरनित्स वेनोआ, वगदानोव, स्टेला क्रैम्बिस जैसे महारथी शांतिनिकेतन में थे। शांतिनिकेतन की देखभाल के साथ ही रवीन्द्रनाथ देश का भी काम कर रहे थे, साथ में अपना लेखन कार्य भी।

लेकिन विश्वभारती का काम अब काफी बढ़ गया था। इसके लिए काफी धन की जरूरत थी। मगर धन कहां था! रवीन्द्रनाथ धन का जुगाड़ करने के लिए निकल पड़े। वे पहले काशी गए। वहां उन्हें भाषण देना था। इसके बाद वे लखनऊ गए। वहां वे कवि और गीतकार अतुलप्रसाद सेन के यहां ठहरे। इसके बाद मुंबई, वहां से अहमदाबाद फिर वहां से कराची। विश्वभारती के लिए सिंधी व्यापारियों से उन्हें मदद में अच्छी रकम मिल गई। इस सफर का आखिरी पड़ाव गुजरात का पोरबंदर था।

शांतिनिकेतन लौटने के बाद ही कवि शिलांग के लिए निकल पड़े। वहां उन्होंने "यक्षपुरी" नाटक लिखा। बाद में उनका नाम बदलकर "रक्तकरवी" रख दिया। कलकत्ता लौटकर "विसर्जन" नाटक खेलने की तैयारी होने लगी। रवीन्द्रनाथ ने नाटक में "जय सिंह" का अभिनय किया। इसके पहले उन्होंने "रघुपति" की भूमिका निभाई

थी। शांतिनिकेतन में पूरी तरह से पढ़ाई शुरू हो गई थी। रवीन्द्रनाथ खुद भी कक्षाएं लेने लगे। तभी उन्हें इटली की एक रेल दुर्घटना में पियर्सन साहब की मृत्यु की खबर मिली। वे बहुत दुःखी हुए। इसके बाद रवीन्द्रनाथ के प्रिय सुकुमार राय की अकाल मौत ने उनके दुःख को और बढ़ा दिया।

देश में हिन्दू-मुसलमान समस्या दिनों दिन उलझती जा रही थी। रवीन्द्रनाथ ने उन दिनों दो लेख लिखे - "समस्या" और "समाधान"। उन्होंने लिखा कि भारत की भलाई के लिए हिंदुओं और मुसलमानों को बराबरी का दर्जा देना पड़ेगा! उन्होंने यह भी कहा - "मुसलमानों के लिए एकजुट होना जितना आसान है, हिंदुओं के लिए उतना नहीं। हिंदुओं की संख्या बड़ी है लेकिन वे कमजोर हैं। सिर्फ चरखा कातते रहने से ही यह समस्या नहीं सुलझेगी। विदेशियों को भारत से भगाने के बावजूद यह आग जलती रहेगी। यहां तक कि स्वदेशी राज होने के बाद भी यह समस्या बनी रहेगी। आज से दो सौ साल पहले भी चरखा चल रहा था। करघे भी बंद नहीं थे। मगर इन सबके बावजूद यह आग पूरी तौर से जल रही थी। इस आग को भड़काने में विभिन्न धर्मों की मूर्खता भरी जड़ता ईंधन का काम कर रही है।"

सन् 1923 के अंत में वे एक बार फिर गुजरात गए, सहायता मांगने। उन्हें अच्छी-खासी सहायता मिली भी। उसी धन से "नंदन" कलाभवन बना। उन्हें चीन से भी बुलाया गया। चीन जाने से पहले कलकत्ता विश्वविद्यालय में उन्होंने तीन भाषण दिए। चीन के सफर में कवि के साथ नंदलाल बसु, क्षितिमोहन सेन, कालिदास नाग और एमहर्स्ट भी थे। 21 मार्च 1924 को कलकत्ता बंदरगाह से जहाज पर सवार होकर रंगून, पेनांग, क्वालालमपुर होकर सिंगापुर पहुंचे। वहां से चीन जाने वाले एक दूसरे जहाज से वे 12 अप्रैल को संघाई पहुंचे।

संघाई से नदी के रास्ते नानकिंग। उसके बाद बीजिंग। जहां-जहां वे गए, हर जगह उनका भाषण हुआ, जिसे सुनने के लिए काफी भीड़ होती थी। बुजुर्गों ने रवीन्द्रनाथ को हर जगह सम्मान दिया, लेकिन कुछ युवकों ने रवीन्द्रनाथ के प्रति अपना विरोध भी जताया था।

चीन से जापान। वहां भी भाषणों के दौर चलते रहे। उस सफर में उनकी भेंट क्रांतिकारी रासबिहारी बोस से हुई। टोकियो में भाषण देने से पहले कवि ने जापानियों की अति राष्ट्रीयता की आलोचना की। चीन और जापान के उस सफर में कवि के मन में नए विचार आए। एकाकुरा के प्रसिद्ध कथन "एशिया इज वन" (एशिया एक है) को भी उन्होंने नए सिरे से महसूस किया। उन्हीं दिनों संघाई में "एशियाटिक ऐसोसिएशन" का गठन हुआ।

सन् 1924 में दक्षिण अमरीका के सफर में कवि काफी बीमार पड़ गए। रवीन्द्रनाथ की एक प्रशंसिका विक्टोरिया ओकाम्पो की सेवा से उनकी तबीयत सुधरी।

21 जुलाई सन् 1924 को कलकत्ता लौटते ही उन्हें पेरू की आजादी की सौवीं सालगिरह के जलसे में भाग लेने के लिए दक्षिण अमरीका से बुलावा आया। रवीन्द्रनाथ फिर विदेश रवाना हुए। उनकी इच्छा थी कि जाते समय वे इजराइल भी होते चले। लेकिन समय की कमी के कारण ऐसा नहीं हो पाया। उन्होंने फ्रांस से दक्षिण अमरीका का अर्जेन्टीना जाने वाला जहाज पकड़ा। उस बार उनके साथ उनके सचिव के रूप में एलमहर्स्ट थे। राजधानी ब्यूनस आयर्स में पहुंचते-पहुंचते रवीन्द्रनाथ बीमार हो गए। डाक्टरों ने कहा कि ऐसी हालत में पेरू जाना ठीक नहीं। इसलिए उन्हें अर्जेन्टीना में रुकना पड़ा। संयोग से वहीं उनकी एक प्रशंसिका, धनी और पढ़ी-लिखी महिला विक्टोरिया ओकाम्पो से भेंट हुई। कवि उनके अतिथि के रूप में साम इसिप्रो

नामक जगह के एक हरे-भरे बंगले में ठहरे। वहां ओकाम्पो से रवीन्द्रनाथ की और ज्यादा निकटता हुई। रवीन्द्रनाथ के प्रेम में ओकाम्पो ने अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया। रवीन्द्रनाथ ने उन्हें बांग्ला का एक शब्द सिखाया - "भालोबासा" (प्रेम)। ओकाम्पो वहां से कवि को चापाद सलाल नामक एक दूसरी जगह ले गईं। उनकी सेवा और देखभाल से रवीन्द्रनाथ के लिए वे दिन मधुरता से भर गए। ओकाम्पो से कवि का यह प्रेम जीवन भर बना रहा। वे साम इसिप्रो में जिस सोफे पर बैठते थे, वह शांतिनिकेतन के रवीन्द्र सदन में आज भी रखा हुआ है। रवीन्द्रनाथ ने "पुजारी" नामक अपनी किताब ओकाम्पो को भेंट की थी। उसमें उन्होंने लिखा था -

विदेश के प्रेम भाव से
जिस प्रेयसी ने बिछा दिया आसन
हर दिन रात में कानों में
गूंजता है उसी का भाषण।

देश के राजनीतिक हालात अच्छे नहीं थे। बंगाल आर्डिनेन्स कानून पास करके काफी नेताओं और कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया गया था। बेलगांव में कांग्रेस अधिवेशन के सभापति महात्मा गांधी थे। उस सभा में असहयोग की नीति को फिलहाल अमल में न लाने का फैसला हुआ। लेकिन चरखा कातने और खद्दर के प्रचार की नीति पर दोनों में अकेले काफी देर तक बातें हुईं। मगर दोनों ही एक दूसरे को अपनी बात नहीं समझा पाए।

16 जून 1925 को देशबंधु चितरंजन दास का दार्जिलिंग में देहांत हो गया। रवीन्द्रनाथ ने अपनी एक कविता के जरिए उन्हें श्रद्धांजलि जताई - "जिस अमर प्राण को लेकर आए थे तुम अपने साथ, मर कर तुमने उसी को दे दिया दान।" उस समय सारे देश में चरखे की

लहर फैली हुई थी। रवीन्द्रनाथ इसके खिलाफ थे, उन्होंने अपने एक लेख में लिखा - "चरखे के साथ स्वराज को जोड़कर इस देश की आम जनता को स्वराज के बारे में उलझाने की कोशिश की जा रही है।"

चरखे के बारे में रवीन्द्रनाथ की राय से काफी लोग सहमत नहीं थे। मगर कवि को अपनी बात कहने में कोई दुविधा नहीं थी। उन्होंने "स्वराज साधन" नामक लेख में लिखा - "बड़ी आसानी से और जल्दी ही हमें स्वराज मिल जाएगा, यह बात कुछ दिनों से जनता को भुलावे में डाले हुए है। लम्बे समय से हम लोगों की धारणा थी कि स्वराज पाना बहुत कठिन है। ऐसे समय जैसे ही हमारे कानों में आसानी से और जल्दी ही स्वराज पाने की बात पहुंची, तब इस बारे में सोचने-विचारने की लोगों को जरूरत ही महसूस नहीं हुई। किसी संन्यासी द्वारा तांबे के पैसे को मोहर में बदलने की बात पर जो लोग यकीन कर लेते हैं, वे समझ की कमी के कारण ऐसा करते हैं; ऐसी बात नहीं है, बल्कि लालच के कारण कुछ सोचने की इच्छा न होने से वे सब इसी तरह खुश हो जाते हैं।

सन् 1925 में इटली से, भारत के बारे में जानकारी रखने वाले दो विद्वान, तुच्ची और फर्मी भी शांतिनिकेतन में पढ़ाने के लिए आए। वे अपने साथ मुसोलिनी से भेंट में प्राप्त काफी किताबें भी लाए थे। उन्हीं दिनों भारतीय दर्शन कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता में हुआ। रवीन्द्रनाथ को उसका सभापति बनाया गया। रवीन्द्रनाथ ने अपने भाषण में गरीब उपेक्षित जनता के धर्म पालन के धार्मिक और दार्शनिक पहलुओं के बारे में बताया।

उन्हें लखनऊ से भी निमंत्रण मिला। वहां अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन हो रहा था। वहां पर उनके बड़े भाई द्विजेन्द्रनाथ के परलोक

सिधारने की खबर पाकर वे शांतिनिकेतन लौट आए। वहां पहुंचने के बाद उन्हें ढाका से बुलावा आया। वे ढाका पहुंचे। ढाका विश्वविद्यालय में उन्होंने "कला का दर्शन" विषय पर भाषण दिया। वहां पर सात दिनों तक राजकीय अतिथि रहकर वे मैमन सिंह और कुमिल्ला गए। वहां से अगरतला। वहां भी लोगों ने उन्हें सम्मानित किया।

कलकत्ता लौटकर देश के राजनीतिक हालात देखकर कवि बहुत दुःखी हुए। तभी हिन्दू-मुसलमान के दंगे शुरू हो गए। यह सब देख-सुनकर कवि ने खीझकर एक चिट्ठी में लिखा - "इस तरह के धर्म के अति मोह और उसके भयावह रूप से नास्तिकता कहीं बेहतर है।" "धर्म मोह" नामक कविता में उन्होंने लिखा -

"धर्म के वेश में मोह जिन्हें जकड़ता आकर
अंधे होकर वे ही मारते और खुद भी जाते मर
नास्तिक जन को भी भगवान का मिलता है वर
जो धर्म के नाम पर करता नहीं आडम्बर।"

उन्होंने शांतिनिकेतन में रहते हुए एक नाटक लिखा - "नटीर पूजा (नटी की पूजा)।" वह नाटक शांतिनिकेतन और कलकत्ता में खेला गया। पहली बार एक अच्छे परिवार की लड़की को लोगों ने उसमें नाचते हुए देखा। उस जमाने में यह बड़े साहस की बात थी। "नटी की पूजा" के गीतों के अलावा भी कवि ने अलग से काफी गीत लिखे। वे गीत उनके हाथ की लिखावट में छपी किताब "वैकाली" में शामिल हैं। इसी समय प्रमथ चौधुरी की लिखी किताब "रायतेर कथा" (रैयतों की कहानी) भी छपी। रवीन्द्रनाथ ने इस किताब के बारे में लिखा- "मेरा पैदाइशी पेशा जमींदारी है, लेकिन मेरी रुचि का पेशा आसमानदारी है। इसीलिए जमींदारों की तरह जमीन पर कब्जा करके बैठे रहने की बात मेरा मन नहीं मानता। मुझे पता है, जमींदार जमीन

का जोंक होता है, वह पैरासाइट है, दूसरे पर निर्भर जीव है।"

छह

12 मई 1926 को मुसोलिनी के बुलावे पर रवीन्द्रनाथ इटली रवाना हुए। उनके साथ रथीन्द्रनाथ, प्रतिभा देवी, प्रशांतचंद्र महलानवीस तथा उनकी पत्नी रानी थी। इस सफर को लेकर देश-विदेश में खूब बावेला मचा। फासिस्ट मुसोलिनी के देश में रवीन्द्रनाथ को बुलाने के पीछे जरूर कोई खराब मतलब होगा - इसी का चारों तरफ प्रचार होने लगा। रवीन्द्रनाथ के दोस्त रोम्यां रोलां भी इस बात से खुश नहीं थे। रवीन्द्रनाथ नेपल्स होते हुए रोम पहुंचे। वहां उनके टहरने और घूमने-फिरने की भरपूर सुविधा थी। वे चौदह दिन रोम में रहे। एक दिन लोगों की नजर बचाकर रवीन्द्रनाथ से मिलने के लिए दार्शनिक वेनदोक्ते क्रोचे पहुंचे। उन्होंने रवीन्द्रनाथ को मुसोलिनी के असली इरादे की जानकारी दी।

रोम से फ्लोरेन्स और तुरीन होते हुए स्विटरजरलैंड। वहां रोम्यां रोलां से भेंट हुई। उन्होंने रवीन्द्रनाथ को इटली के असली रूप के बारे में बताया। कवि की आंख खुल गई। उन्होंने एंड्रूज को लिखी अपनी चिट्ठी में इटली और मुसोलिनी के बारे में अपनी बदली हुई राय का जिक्र किया। वह चिट्ठी "मैनचेस्टर गार्जियन" पत्रिका में छपी। उसे पढ़कर मुसोलिनी के निकट के लोग रवीन्द्रनाथ से चिढ़कर गाली-गलौच करने लगे। अध्यापक तुच्ची ने विश्वभारती की नौकरी छोड़ दी। फार्मिकी वहां से पहले ही चले गए थे।

ज्यूरिख, वियेना और पेरिस होते हुए रवीन्द्रनाथ इंग्लैंड पंहुचे। वहां पहले एलमहर्स्ट के यहां फिर डेवेनशायर के डर्टिन्टन हॉल में गए। उस

बार लंदन में रहने के दौरान दुनिया के जाने माने मूर्तिकार एपस्टाइन से परिचय हुआ। उन्होंने कवि की एक मूर्ति बनाई। इसके बाद वे लंदन से नार्वे की राजधानी ओस्लो पहुंचे। वहां पर भाषणों और पार्टियों का सिलसिला चलता ही रहा। इसके बाद रवीन्द्रनाथ स्वीडन की राजधानी स्टाकहोम तथा डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेगन गए।

वहां से जर्मनी के हैम्बुर्ग में पहुंचे। वहां उनके भाषण का विषय था - "संस्कृति तथा उन्नति।" वे हैम्बुर्ग से बर्लिन गए। एक दिन जर्मनी के राष्ट्रपति हिंडेनबुर्ग के बुलावे पर रवीन्द्रनाथ उनसे मिलने गए। उनकी एक दिन अलवर्ट आइंस्टीन से भी भेंट हुई। फिर बर्लिन से म्यूनिख गए। नूरेनबर्ग, कोलोन, डुसेलडर्फ होकर बर्लिन लौटे।

इसी दौरान उन्होंने ढेर सारे गीत भी लिखे। ड्रेसड्रेन में पहुंचने के बाद एक दिन वहां जर्मन भाषा में उनका लिखा नाटक "डाकघर" खेला गया। वहां से वे चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग पहुंचे। प्राग से वियेना, इसके बाद हंगरी के बुडापेस्ट में रवीन्द्रनाथ गए। वहां पर बालातोन झील के उस पार उन्होंने एक पेड़ लगाया।

इतने ज्यादा सफर के कारण रवीन्द्रनाथ बीमार पड़ गए। इसके बावजूद वे युगोस्लाविया गए। बेलग्रेड में उनकी जबर्दस्त आवभगत हुई। बेलग्रेड से वे बुलगारिया पहुंचे। वहां की राजधानी सोफिया में भी उनका सम्मान हुआ। सोफिया से रोमानिया की राजधानी बुखारेस्ट गए। हर जगह उनका स्वागत हुआ। बुखारेस्ट से इस्ताम्बूल, उसके बाद ग्रीस, जहां रवीन्द्रनाथ ने एथेन्स की पुरानी यादगार इमारतों को देखा।

आखिरकार वे जहाज से भारत रवाना हुए। विदेश सफर करते हुए रवीन्द्रनाथ बेहद थक चुके थे। रवीन्द्रनाथ, मिस्र के एलेकजेन्ड्रिया भी गए, वहां से कैरो। अजायबघर में रखी ममी और दूसरी शिल्पकलाओं को देखकर उन्होंने प्रभावित होकर लिखा - "इन यादगारों को देखकर

मैं मन ही मन सोचता हूं कि यूं तो मनुष्य बाहर से साढ़े तीन हाथ का ही होता है मगर अंदर से वह कितना बड़ा होता है।" रवीन्द्रनाथ की भेंट मिस्र के बादशाह फहद से हुई। फहद ने विश्वभारती को बड़ी संख्या में अरबी किताबें उपहार में दी।

रवीन्द्रनाथ को भारत लौटते ही, दिल्ली में स्वामी श्रद्धानंद के परलोक सिधारने का दुःखद समाचार मिला। रवीन्द्रनाथ ने देश के लोगों से धीरज रखकर समस्या का कोई हल ढूंढ़ने के लिए कहा। उन्होंने स्वामी श्रद्धानंद पर शांतिनिकेतन में एक भाषण भी दिया।

कवि के अंदर धीरे-धीरे राजनीति का जोश कम होता जा रहा था। रवीन्द्रनाथ फिर से अपने लेखन कार्य में पूरी तौर से लग गए। "नटीर पूजा" नाटक खेले जाने के बाद रवीन्द्रनाथ ने "नटराज ऋतुरंगशाला" नाटक लिखा। इसके साथ "वृक्ष वंदना।" पेड़ और लताओं पर लिखी उनकी कविताएं बाद में "वनवाणी" नामक किताब में शामिल हुई। उन्हीं दिनों रवीन्द्रनाथ ने नृत्य पर आधारित गीत लिखे। कवि की रचनाओं में जैसे नटराज की कला नजर आने लगी। तभी तो वे यह बात लिख सके - "इस दुनिया के कण-कण में नृत्य की छाया, झिलमिलाती, नजर आती।"

शांतिनिकेतन में सुख-चैन से उनके दिन बीत रहे थे। तभी भरतपुर के महाराजा किसन सिंह की उन्हें चिट्ठी मिली। वहां होने वाले हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापति बनने के लिए उनसे निवेदन किया गया था। रवीन्द्रनाथ राजी हो गए। वहां उन्होंने अपना भाषण दिया। वहां से जयपुर होते हुए अहमदाबाद पहुंचे। पहले की तरह इस बार भी उद्योगपति अम्बालाल साराभाई के यहां ठहरे। वहां से आगरा होते हुए वे वापस शांतिनिकेतन आए। फिर कलकत्ता गए। उसके बाद शिलांग। वहां एक नया उपन्यास लिखना शुरू किया। पहले उसका

नाम "तिन पुरुष" था, बाद में जिसका नाम बदलकर "योगायोग" (संयोग) रखा गया।

विदेश से उन्हें एक बार फिर बुलाया आया। इस बार पश्चिम के देशों से नहीं, पूरब के देशों से । इंडोनेशिया के प्रति उनका पुराना लगाव था। इस सफर में उनके साथ सुनीतिकुमार चटर्जी, सुरेन्द्रनाथ कर, वीरेन्द्रकृष्ण देववर्मा एवं ओलंदाज संगीत के जानकार आर्नाल्डे बाके भी सपत्नीक गए। वे लोग जहाज से पहले सिंगापुर, वहां से मलयेशिया पहुंचे। वहां से जावा और बालीद्वीप। कवि को इंडोनेशिया का नृत्य बहुत अच्छा लगा। वह नृत्य रामायण तथा महाभारत पर आधारित होता है। वे बालीद्वीप में कुछ दिन रहे। जकार्ता शहर से वे बोरोवुटूर के विशाल मंदिर देखने गए। कुछ दिन मजे से बिताने के बाद वे थाइलैंड पहुंचे। बैंकाक के राज परिवार की ओर से उनकी बड़ी आवभगत हुई।

इंडोनेशिया छोड़ने के बाद जहाज में बैठे-बैठे उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कविता "सागरिका" लिखीं। उसमें प्राचीन भारत के साथ प्राचीन जावा-बाली के संबंधों की बात रूपक में कही गई है, साथ ही उस समय के कमजोर भारत के प्रतिनिधि के रूप में एक कवि के वहां जाने की बात भी बहुत सुंदर रूप से उसमें लिखी है। इस बार इंडोनेशिया में रवीन्द्रनाथ के साथ गुपचुप मिलने के लिए सुकर्ण भी गए थे, जो बाद में इंडोनेशिया के राष्ट्रपति बने। कवि के जावा सफर का एक और फल इस देश को बाटिक कला शैली के रूप में मिला। इंडोनेशिया से वह कला पहली बार शांतिनिकेतन में आई, जहां से वह पूरे देश में लोकप्रिय हुई।

उन्हें विलायत जाने के लिए फिर बुलावा आया। आक्सफोर्ड से "हिबर्ट भाषण" देने के लिए उन्हें बुलाया गया था। वहां जाने से पहले

वे मद्रास गए, फिर पांडिचेरी। वहां श्री अरविंद से भेंट हुई। मगर उन्होंने कोलम्बो पहुंचकर विलायत जाने का इरादा बदल दिया। उनकी तबीयत ठीक नहीं थी। वे उपाचार्य ब्रजेन्द्रनाथ शील के अतिथि बनकर मैसूर चले गए। वहीं पर "शेपेर कविता" (अंत की कविता) नामक एक उपन्यास पूरा किया। मद्रास, श्रीलंका और मैसूर में दो महीने बिताकर वे शांतिनिकेतन लौट आए।

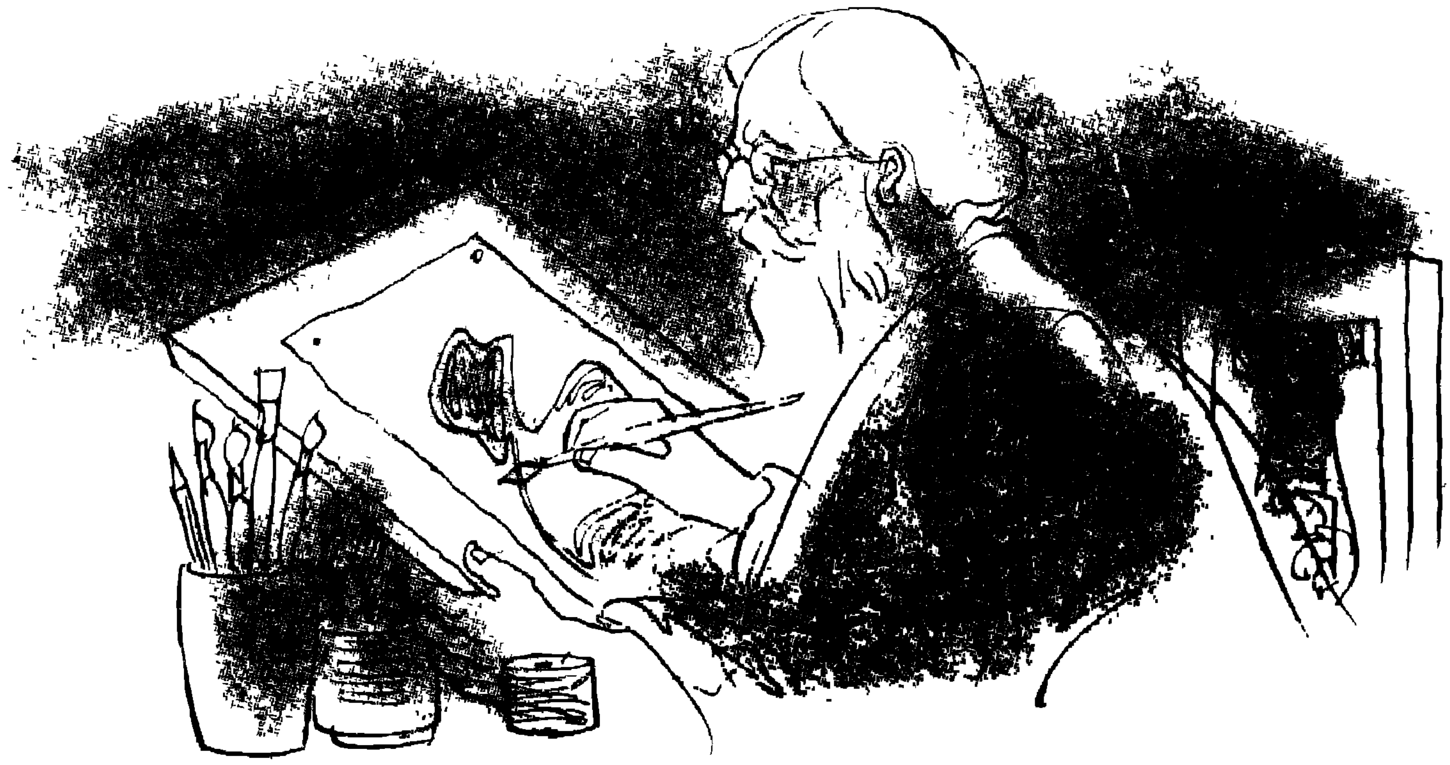
कलकत्ता में उन दिनों रवीन्द्र साहित्य पर बहस चल रही थी। "कल्लोल" और "कालिकलम" नामक दो मासिक पत्रिकाओं में देहवादी रचनाएं छप रही थीं। उन्हीं में रवीन्द्रनाथ ने "साहित्य धर्म" नाम से एक लेख लिखकर चिरंतन रस की वकालत की। जोड़ासांको के निवास में इस विषय पर एक सभा में खुलकर बहस हुई। अपूर्व कुमार चंद और प्रशान्त महलानवीस उस सभा के आयोजक थे। वहां दोनों ही विचारधारा के लेखक मौजूद थे। रवीन्द्रनाथ ने कहा, "जिस समालोचना में शांति की बात नहीं होती, जो सिर्फ चोट पहुंचाने का काम करती है, जिसमें सिर्फ दोष ढूंढ़ने के लिए ही सारी ताकत लगाई जाती है, ऐसी समालोचना को मैं ठीक नहीं समझता।"

शांतिनिकेतन लौटकर कवि फिर आश्रम गुरू बन गए। उनका मन अब शांत था। वहां पर उन्होंने 14 जुलाई 1928 को बहुत धूमधाम से पेड़ लगाने की शुरूआत की। धरती को हरा-भरा बनाए रखने की यह उनकी कोशिश थी। जलसे की मूल भावना पेड़ों की वंदना थी। इसी के साथ श्रीनिकेतन में भी "हलकर्षण" यानी हल चलाने के जलसे की शुरूआत हुई। रवीन्द्रनाथ ने खुद अपने हाथों से हल चलाया। रवीन्द्रनाथ के "वृक्षारोपण उत्सव" को देखकर बाद में पूरे भारत में भी "वन महोत्सव" मनाया जाने लगा। "वृक्षारोपण उत्सव" में एक मन को लुभाने वाला जुलूस भी निकला, जिसमें लड़कियां नाचते-गाते चल

रही थीं। इंडोनेशिया के बालीद्वीप में उत्सव के मौके पर रवीन्द्रनाथ वहां की लड़कियों को इस तरह जुलूस में नाचते-गाते देखकर प्रभावित हुए थे। उन्होंने शांतिनिकेतन में भी यह सिलसिला शुरू किया।

वे कलकत्ता लौट आए। उन दिनों उन पर चित्र बनाने का नशा चढ़ चुका था। समय पाते ही खूब चित्र बनाते। उस समय की एक चिट्ठी में उन्होंने लिखा था - "रेखाओं के मायाजाल में मेरा मन रम गया है।" इसी समय "राजा ओ रानी" नाटक को नया रूप देकर उसका नाम बदलकर "तपती" रखा। कलकत्ता में वह खेला भी गया। उस नाटक में राजा विक्रम वह खुद बने। "तपती" नाटक खेले जाने की तैयारियों के दौरान ही 63 दिनों की भूख हड़ताल के बाद लाहौर जेल में क्रांतिकारी जतीन दास की मौत की खबर उन्हें मिली। नाटक की तैयारी अधूरी छोड़कर रवीन्द्रनाथ ने बहुत नाराज होकर लिखा– 'ऐसा क्रोध मुझे दो, जला दे सारी नीचताओं को। मुझे शक्ति दो हे भैरव।'

बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ की इच्छा पर कवि फिर



से अहमदाबाद गए। अम्बालाल साराभाई के यहां ही वे ठहरे। वहां से बड़ौदा गए। वहां वे राज अतिथि के रूप में रहे। बड़े आनंद से कई दिन बिताने के बाद वे कलकत्ता लौटे। कलकत्ता से सन् 1930 में एक बार फिर यूरोप सफर पर निकले। उन्हें आक्सफोर्ड में "हबर्ट भाषण" देना था। इसके अलावा वहां वे अपने चित्रों की नुमाइश भी करना चाहते थे।

फ्रांस पहुंचने के महीने भर में ही पेरिस में कवि के चित्रों की नुमाइश का इंतजाम हो गया पिगाल में। इसका इंतजाम अर्जेंटीना की उसी विदुषी महिला विक्टोरिया ओकाम्पो ने किया था। खबर मिलते ही वे तुरंत पेरिस पहुंची, जहां उन्हीं की कोशिशों से नुमाइश का काम सफलता से पूरा हुआ। ओकाम्पो से रवीन्द्रनाथ की वही आखिरी भेंट थीं। रवीन्द्रनाथ की जन्मशती के दौरान ब्यूनस आयर्स में बड़े धूमधाम से उनका जन्मदिन मनाया गया था। इसके अलावा वहां की एक सड़क का नाम भी उन्होंने रवीन्द्रनाथ के नाम पर रखवाया। रवीन्द्रनाथ पेरिस का काम पूरा करके इंग्लैंड चले गए। लंदन से होते हुए वे बर्मिंघम के उपनगर उडब्रुक पहुंचे। वहां के ईसाइयों के एक आश्रम में रहे।

इधर भारत में गांधी जी की अगुवाई में दूसरी बार कानून भंग आंदोलन शुरू हुआ। गांधी जी ने इस बार पूर्ण स्वराज की मांग की थी। उन्होंने दांडी मार्च करके नमक कानून तोड़ा। बंगाल के क्रांतिकारियों ने भी मास्टर सूर्य सेन की अगुवाई में चटगांव के हथियार खजाने को लूट लिया। इसके बाद ढाका में हिन्दू-मुसलमान दंगे शुरू हो गए। इंग्लैंड में रहने के दौरान रवीन्द्रनाथ के पास देश की हर खबर पहुंचती रही। गांधी जी से मतभेद होते हुए भी उन्होंने विदेशी पत्र-पत्रिकाओं में इस कानून भंग आंदोलन के प्रति अपनी पूरी सहमति जताई।

आक्सफोर्ड के "हिबर्ट भाषण" में कवि के भाषण का विषय था-

"द रिलीजन आफ मैन" (मनुष्य का धर्म)। भाषण के बाद डर्टिंगटन हॉल में एलमहर्स्ट के मेहमान होकर कुछ दिन रहने के बाद रवीन्द्रनाथ 12 जुलाई 1930 को जर्मनी गए। जर्मनी के पार्लियामेंट राइथस्टाग में जर्मन प्रधानमंत्री डा. ब्रुलिंग तथा अन्य सदस्यों के साथ रवीन्द्रनाथ का परिचय कराया गया। इसके बाद उन्होंने वैज्ञानिक आइंस्टाइन से भेंट की। वे उनके घर गए। भगवान के वजूद पर काफी देर तक आइंस्टाइन से रवीन्द्रनाथ की बात हुई। इस चर्चा में रवीन्द्रनाथ ने किसी वैज्ञानिक की तरह बहस की और वैज्ञानिक आइंस्टाइन ने कवि की तरह।

बर्लिन में भी रवीन्द्रनाथ के चित्रों की नुमाइश हुई। इसका इंतजाम विदुषी जर्मन महिला डा. आना जेलिग ने किया। वे रवीन्द्रनाथ के कहने पर कुछ दिनों के लिए शांतिनिकेतन भी आई थीं। बर्लिन से वे म्यूनिख गए। वहां के नजदीक ही ओबेरामारगाड नामक जगह में, ईसा मसीह के जीवन पर आधारित नाटक, "पैशन प्ले" ने कवि को प्रभावित किया। इसे लेकर उन्होंने अंग्रेजी में एक लम्बी कविता लिखी- "द चाइल्ड"। मूल रूप से अंग्रेजी में रवीन्द्रनाथ ने यही अकेली कविता लिखी थी। बाद पें उन्होंने बांग्ला में "शिशुतीर्थ" के नाम से इसका अनुवाद किया। "पैशन प्ले" का आयोजन हर दस साल बाद होता है। जिस व्यक्ति को इसके लिए चुना जाता है उसे दस साल तक बड़ा पवित्र जीवन बिताना पड़ता है। तभी उसे ईसा मसीह की भूमिका निभाने लायक समझा जाता है।

म्यूनिख से बर्लिन होते हुए रवीन्द्रनाथ डेनमार्क के एल्सिनोर शहर पहुंचे। वहां अपना भाषण देकर कोपेनहेगन चले गए, वहां से बर्लिन। फिर जेनेवा। जेनेवा में रहने के दौरान उन्हें सोवियत रूस जाने का निमंत्रण मिला। उसके पीछे आइंस्टाइन का हाथ था। तीन-चार साल पहले मास्को जाने की बात हुई थी। मगर तब संभव नहीं हुआ था।

इस बार उस सफर में उनकी साथी थी, आइंस्टाइन की बेटी माग्रेट, डा. अमिय चक्रवर्ती, डा. हेरी टिम्बर्स और आर्यनायकम। बर्लिन से रेलगाड़ी से वे मास्को पहुंचे।

मास्को शहर में कवि की अगुवानी प्रोफेसर पेट्रोफ ने की। मास्को के लेखकों ने रवीन्द्रनाथ के लिए एक कन्सर्ट आयोजित किया। सोवियत कला अकादमी के सभापति प्रोफेसर कोगन, अध्यक्ष पिनकेविच, मदाम लिंगविनोव फेरा इन्वार, फेदर ग्लादकोव आदि लेखकों और लेखिकाओं से रवीन्द्रनाथ का परिचय हुआ। इसके बाद पायनियर कम्यून में वहां के किशोर-किशोरियों से रवीन्द्रनाथ की मुलाकात हुई। वे एक दिन किसानों से भी मिलने गए। विभिन्न विषयों में उनकी रुचि को देखकर कवि बहुत खुश हुए। उन्होंने बाद में लिखा था "अगर मैं रूस न गया होता तो मेरी इस जन्म की तीर्थयात्रा अधूरी रहती।"

रवीन्द्रनाथ मास्को के प्रसिद्ध "कृषि भवन" भी देखने गए। कुछ दिनों के बाद उनके चित्रों की वहां नुमाइश हुई। उन्होंने मास्को आर्ट थियेटर में टॉल्सटाय का 'रिजरेक्शन' और बैले (नृत्य नाटिका) भी देखा। वे मास्को में दो सप्ताह रहे। उन्होंने एक चिट्ठी में लिखा था - "यहां जो बात सबसे ज्यादा पसंद आई, वह यह कि यहां पैसे से होने वाली बुराइयां देखने को नहीं मिलीं। सिर्फ इसी कारण इस देश में आम जनता का आत्मसम्मान इतना प्रबल है।" रूस के बारे में विभिन्न लोगों को लिखी उनकी चिट्ठियां बाद में राशियार चिठि" (रूस की चिट्ठी) नामक किताब में छपीं।" रवीन्द्रनाथ ने रूस की कृषि और शिक्षा व्यवस्था की भरपूर प्रशंसा की थी, मगर वहां की राष्ट्र व्यवस्था आदि की आलोचना भी की थी, जिसे आज के अधिकतर वामपंथी भी सही ठहराते हैं।

मास्को से फिर बर्लिन। वहां से अमरीका। न्यूयार्क से बोस्टन। उसके बाद न्यू हैवेन के येल विश्वविद्यालय में। मगर बीमार हो जाने के कारण वहां भाषण नहीं दे पाए। वे फिलाडेल्फिया होते हुए न्यूयार्क लौटे। होटल बिल्टमोर में रवीन्द्रनाथ के लिए जबर्दस्त सम्मान सभा का आयोजन हुआ। वे अमरीका के राष्ट्रपति हूबर से भी मिलने गए। कार्नेगी हॉल में उनका भाषण हुआ। बहाई संप्रदाय के बुलावे पर उन्होंने जरथुस्त्र और बहाउल्ला के बारे में भाषण दिया। उस बार एक गूंगी, बहरी, अंधी मगर बेहद विदुषी महिला हेलन केलर से उनकी दोस्ती हुई। अमरीका में भी रवीन्द्रनाथ के चित्रों की नुमाइश हुई। उनके चित्रों के बारे में आनंद कुमारस्वामी ने एक बहुत अच्छा लेख लिखा। चिंतक लेखक विल डरंट से भी रवीन्द्रनाथ का परिचय हुआ। अमरीका छोड़ने के ठीक पहले रूथ डेनिस नाम की एक प्रसिद्ध नर्तकी ने रवीन्द्रनाथ की कुछ कविताओं पर नृत्य किया। उस नृत्य आयोजन से जो पैसा मिला, उसे रवीन्द्रनाथ ने न्यूयार्क के बेरोजगारों के सहायता कोष में दान दे दिया।

रवीन्द्रनाथ लंदन वापस लौटे। वहां से विश्वभारती के लिए धन जुटाने के काम में जुट गए। "स्पेक्टर" पत्रिका के संपादक ईवलिन रेंच ने रवीन्द्रनाथ को सम्मानित किया। इस सभा में जार्ज बर्नाड शॉ भी मौजूद थे। रवीन्द्रनाथ के साथ उनकी कई विषयों पर काफी लंबी बातचीत हुई।

उसी समय लंदन में भारत और ब्रिटेन के संबंधों को लेकर गोलमेज बैठक हुई। रवीन्द्रनाथ ने "स्पेक्टर" के एक लेख में गांधी जी से निवेदन किया कि वे इस बैठक में जरूर भाग लें। हिन्दू और मुसलमान नेताओं का आपसी विरोध खत्म होने की कोई सूरत नजर नहीं आ रही थी। कुछ नेताओं ने रवीन्द्रनाथ से उनके बीच

सुलह कराने का अनुरोध किया। लेकिन रवीन्द्रनाथ ने काफी सोच विचार्कर तथा उनसे बातें करके यह महसूस किया कि यह काम उनका नहीं है।

यूरोप और अमरीका का सफर खत्म करके भारत वापस लौटकर रवीन्द्रनाथ सोवियत रूस के कदमों पर चलकर सामुदायिक भंडारों के जरिए संघबद्ध जीवन की बात सोचने लगे। लेकिन किसी ने भी इसमें अपनी रुचि नहीं दिखाई। आखिरकार अपना इरादा बदलकर वे गीत लिखने में जुट गए। उन गीतों को लेकर उन्होंने "नवीन" नाम से एक लोक नाटक लिखा। रवीन्द्रनाथ के सत्तर साल पूरे हो जाने पर उनका धूमधाम से जन्मदिन मनाया गया। उसमें कवि ने कहा, "मेरा सिर्फ एक ही परिचय है, कि मैं और कुछ नहीं, बस एक कवि हूं। मैं दर्शन का जानकार कोई बहुत बड़ा पंडित, गुरू या नेता नहीं हूं, मैं तो विचित्र का दूत हूं।"

रवीन्द्रनाथ घूमने के लिए दार्जिलिंग गए। पूरा देश उस समय उथल-पुथल से गुजर रहा था। हिन्दू-मुसलमानों में विरोध ठना हुआ था। कवि ने उन दिनों "हिन्दू-मुसलमान" नामक लेख में लिखा - "जिस देश में एकमात्र धर्मों का मेल ही अगर लोगों को करीब लाता हो, किसी और बंधन से लोगों के दिल न मिल पाते हो, तो वह देश अभागा नहीं तो और क्या है। जो देश खुद ही धर्म के जरिए अपनों में दरार डालने का काम करे, इससे ज्यादा खतरनाक बात और क्या हो सकती है।"

शांतिनिकेतन लौटकर विश्वभारती के लिए धन के जुगाड़ में रवीन्द्रनाथ भोपाल के राजदरबार में पहुंचे। वहां उनकी आवभगत तो खूब हुई, पर धन नहीं मिला। वापस लौटकर एक बुरी खबर पाकर रवीन्द्रनाथ विचलित हो गए। मेदिनीपुर के हिजली जेल में राजनैतिक

बंदियों पर संतरियों ने गोली चलाकर दो लोगों की हत्या कर दी थी। कलकत्ता की एक जनसभा में रवीन्द्रनाथ ने इस घटना की बेहद निंदा की।

अक्टूबर सन् 1931 में लंदन में दूसरे गोलमेज बैठक मे गांधी जी ने भी भाग लिया था। विलायत से लौटने के बाद गांधी जी को अकारण ही जेल में बंद कर दिया गया। रवीन्द्रनाथ ने उसका लिखित विरोध जताया। भूटान सीमा पर बक्सर जिले के राजबंदियों ने रवीन्द्र जयंती मनाकर कवि को अभिनंदन पत्र भेजा, इस घटना ने उनके दिल को छू लिया। इस पर उन्होंने एक कविता भी लिखी।

सिर्फ इतना ही नहीं, हिजली हत्याकांड के बाद दुःख और दर्द से भरकर तीखा विरोध जताते हुए उन्होंने लिखा "भगवान, तुमने हर युग में, इस दयाहीन दुनिया में, भेजा है हर बार अपना दूत।"

कवि का सत्तरवां जन्मदिन बड़े धूमधाम से मनाया गया। टाउनहाल में रवीन्द्रनाथ के चित्रों की नुमाइश के उद्घाटन से जयंती का आयोजन शुरू हुआ। कवि के सम्मान में शरतचंद्र द्वारा लिखे मान पत्र में देश की जनता की ओर से कहा गया था - "कवि गुरू, हम जब भी आपको देखते हैं, बेहद चकित होते हैं।" रामनंद चट्टोपाध्याय ने "द गोल्डन बुक आफ टैगोर" नामक अभिनंदन ग्रंथ तथा रवीन्द्र परिचय सभा के प्रतिनिधि के रूप में "क्षितिमोहन सेन ने "जयंती उत्सर्ग" नामक पुस्तक रवीन्द्रनाथ को भेंट की। उसके दूसरे दिन 31 दिसम्बर को विश्वविद्यालय के सीनेट हाल में कलकत्ता के छात्रों द्वारा रवीन्द्रनाथ को सम्मानित किया गया। जोड़ासांको ठाकुरबाड़ी में इस मौके पर "शापमोचन" (शाप मुक्ति) नाटक का मंचन हुआ। उनके बनाए चित्रों की एक नुमाइश भी हुई। यूरोप और अमरीका के बाद वह नाटक कलकत्ता में पहली बार खेला गया।

सात

खड़दह में कुछ दिन आराम करने के बाद उन्हें फिर विदेश से बुलावा आया। ईरान के बादशाह रजा शाह पहलवी ने उन्हें अपने देश में आने का आग्रह किया था। वे हवाई जहाज से ईरान रवाना हुए। पहले बसरा गए। वहां से मोटर से सिराज, जहां नामी शायर हाफिज और शेख सादी रहते थे। वहां सात दिन रहने के बाद इस्पाहान गए। बीच में प्राचीन राजधानी पारस या पर्सिपोलिस में रूके। वहां से वे आज की राजधानी तेहरान पहुंचे। वहां बादशाह से उनकी भेंट हुई। तेहरान में पचीस बैसाख को उनका जन्मदिन बड़े जोर-शोर से मनाया गया।

उसके बाद वे तेहरान से मोटर के जरिए इराक गए रास्ते में अखामनीय दारायूस की बेहिस्तान शिलालिपि देखी। वहां से बगदाद पहुंचे। वहां बादशाह फैजल से भेंट हुई। बगदाद में भी उनका सम्मान हुआ। उसके बाद वे वहां के रेगिस्तान में बंजारों के तंबुओं में भी गए। बंजारों ने रवीन्द्रनाथ को दावत खिलाई, उन्हें अपना युद्ध नृत्य दिखाया। रवीन्द्रनाथ उनके आवभगत से बहुत खुश हुए। उन्हें काफी पहले लिखी कविता की पंक्ति याद आई - 'काश अगर मैं अरब का बंजारा होता।' बगदाद से वे हवाई जहाज से कलकत्ता लौटे।

लौटते ही उन्हें एक बड़ा झटका लगा। रवीन्द्रनाथ के एकमात्र नाती, उनकी सबसे छोटी बेटी मीरा देवी का बेटा, नीतेन्द्रनाथ की जर्मनी में असमय मृत्यु हो गई थी। रवीन्द्रनाथ शोक में डूब गए।

कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उन्हीं दिनों उन्हें रामतनु लाहिड़ी प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किया। कवि ने विश्वविद्यालय में कमला व्याख्यान दिया। शांतिनिकेतन में लौटकर वे गद्यछंद में कविता लिखने लगे। उनकी कविताओं की किताब "पुनश्च" नाम से छपी। उसी समय शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय के 57 वें जन्मदिन की सभा का आयोजन हुआ।

रवीन्द्रनाथ ने इस अवसर पर अपनी "कालेर यात्रा" (समय का सफर) नामक किताब शरतचंद्र को भेंट की। उन्होंने लिखा - "समय की रथयात्रा की बाधा दूर करने का महामंत्र तुम्हारी प्रबल लेखनी के जरिए सफल हो । इस आशीर्वाद के साथ तुम्हारी लम्बी उम्र की कामना करता हूं।"

उन्हीं दिनों पुणे के यरवदा जेल में कैद गांधी जी अनशन कर रहे थे। अंग्रेज सरकार ने हिन्दुओं और मुसलमानों को दो अलग मतदाता सूची में बांट दिया था। अब सवर्ण और जनजातियों को भी अलग कर दिया। गांधी जी ने जेल से इस तरह के विभाजन का विरोध किया। उसी के विरोध में वे यह अनशन कर रहे थे। रवीन्द्रनाथ यह खबर पाकर 26 सितम्बर 1932 को पुणे रवाना हुए। उसी दिन खबर आई कि ब्रिटिश सरकार ने गांधी जी का प्रस्ताव मान लिया है। गांधी जी ने अनशन खत्म कर दिया। इस मौके पर रवीन्द्रनाथ जेल में मौजूद थे। उन्होंने गाधी जी को नींबू पानी पिलाकर अनशन तुड़वाया। गांधी जी के कहने पर उन्होंने उनका प्रिय गाना "जीवन जब जाता है सूख" गाकर भी सुनाया। कुछ दिन बाद ही 2 अक्टूबर को गांधी जी का जन्मदिन पड़ा। पुणे की एक बड़ी जनसभा में रवीन्द्रनाथ ने अपना लिखा हुआ भाषण पढ़ा। उन्होंने कहा, "देश के लोगों को छुआछूत मिटाना होगा। हिन्दू और मुसलमान अगर मिलकर देश सेवा के लिए अपने को न्योछावर न करें तो स्वराज हासिल करना कठिन हो जाएगा।"

यहां यह बात गौर करने लायक है कि गांधी जी के अनशन के साथ ही शांतिनिकेतन में भी काफी लोगों ने उपवास रखा था। रवीन्द्रनाथ ने इस अनशन व्रत के बारे में कहा था - "देशहित में गांधी जी जिस अहिंसा नीति की अब तक वकालत करते आए थे, आज वे उसी नीति के पालन के लिए अपनी जान भी देने को तैयार

हैं। मुझे ऐसा नहीं लगता कि यह बात किसी की समझ में नहीं आएगी।"

पुणे से रवीन्द्रनाथ शांतिनिकेतन लौटे। इस बार उन्होंने एक लंबी कहानी लिखी - "दो बहनें"। उन्हें प्रफुल्लचन्द्र राय के सत्तरवें जन्म दिवस के समारोह में भाग लेने कलकत्ता जाना पड़ा। उस समारोह के वे सभापति बने। कलकत्ता से वे बरानगर प्रशांतचंद्र महलानवीस के घर गए, जहां उनसे मिलने मदनमोहन मालवीय आए थे। उन्होंने रवीन्द्रनाथ से कहा, "भारत में नई शासन व्यवस्था शुरू होने को लेकर भारत के खिलाफ विदेशों में काफी कुछ ऊल-जलूल कहा जा रहा है। भारतीयों की ज्यादातर मांगें मानी जाने लायक नहीं हैं। अंग्रेजों के दलालों का कहना है कि भारतीय अभी इसके लायक नहीं हैं। रवीन्द्रनाथ का कहना था कि इस कुप्रचार का खंडन करने के लिए विदेशों के प्रमुख शहरों में भारत के बारे में सही जानकारियां तथा सूचनाएं देने के लिए दफ्तर खोलने पड़ेंगे। छिटपुट लेख लिखकर इसे रोकना संभव नहीं है।

इसके बाद रवीन्द्रनाथ दार्जिलिंग में कुछ दिन रहकर शांतिनिकेतन लौटे और वहां अपने काम में डूब गए। उसके पहले 19 दिसम्बर 1932 को सर डैनियल हैमिल्टन के बुलावे पर मोटर बोट से सुंदर वन के गोसावा में ग्राम कल्याण केन्द्र देखने के लिए गए। वहां का कामकाज, खासकर सामुदायिक नीति का प्रसार देखकर, कवि को बहुत खुशी हुई।

अगले साल यानी सन् 1933 की जनवरी में रवीन्द्रनाथ शांतिनिकेतन लौट आए। वे उस समय एक नया नाटक लिख रहे थे। वे अगले कुछ साल अपनी लिखी पुरानी कहानियों तथा नाटकों में काट छांट करके उन्हें नया रूप देने में लगे रहें। शांतिनिकेतन में इधर नृत्य के प्रति लोगों की रूचि बढ़ी थी। वहां नृत्य में माहिर काफी लोग थे।

शांतिनिकेतन में नाच सिखाने के लिए मणिपुर और केरल से कई अच्छे गुरू आए थे। सन् तीस के दशक में रवींन्द्रनाथ ने काफी कुछ लिखा और काम किया। पढ़े-लिखे लोगों का ध्यान उन्होंने सत्य के प्रति खींचा। उन्होंने "शापमोचन", "चित्रांगदा", "चंडालिका", "श्यामा" जैसे कई नृत्य नाटक तथा "ताक्षर देश" (ताश का देश) जैसा असाधारण नृत्य नाटक लिखा। नृत्य-लक्ष्मी को इसके पहले किसी और भारतीय ने इतना सम्मान नहीं दिया था। अपने नृत्य नाटक की मंडली को लेकर रवीन्द्रनाथ पूरा भारत और श्रीलंका घूम आए।

रवीन्द्रनाथ "ताश का देश" नाटक लेकर मुंबई पहुंचे। इसी के साथ भाषणों और सम्मान का दौर भी चलता रहा। वहां से वे आंध्र विश्वविद्यालय में भाषण देने वाल्टेयर गए, भाषण का विषय था - "मनुष्य"। वाल्टेयर से निजाम के हैदराबाद में। वहां के प्रधानमंत्री सर किशन प्रसाद ने उनसे वहां आने का आग्रह किया था। विश्वभारती के इस्लामी विभाग को निजाम की मदद मिल रही थी।

डेढ़ महीने पश्चिम भारत और मध्य भारत में बिताने के बाद रवीन्द्रनाथ कलकत्ता लौटे। राममोहन राय की सौवीं जयंती की सभा में उन्होंने 'भारत पथिक राममोहन' नामक भाषण दिया। शांतिनिकेतन पहुंचने के बाद वहां उनसे मिलने सरोजिनी नायडू आईं। जवाहरलाल नेहरू भी अपनी पत्नी कमला नेहरू के साथ पहुंचे। उनकी इकलौती बेटी इंदिरा प्रियदर्शनी उन दिनों वहां पढ़ती थीं।

कुछ दिनों बाद रवीन्द्रनाथ को पता चला कि गांधी जी हरिजन आंदोलन के प्रचार के लिए कलकत्ता पहुंच रहे हैं। पुणे समझौता को लेकर बंगाल के ऊंची जाति के हिन्दू गांधी जी से नाराज थे, इसीलिए उन्होंने तय किया कि वे इस बार गांधी जी का स्वागत नहीं करेंगे। रवीन्द्रनाथ ने इस बात पर नाराज होकर कहा, 'लेकिन मैं गांधी जी का

स्वागत करूंगा।' दूसरी तरफ गांधी जी से उनका मतभेद भी बढ़ गया। "बिहार का भूकम्प छुआछूत के पाप के कारण आया है", गांधी जी द्वारा यह बात कहे जाने पर रवीन्द्रनाथ ने जवाब में कहा था - "विज्ञान की बात को कुसंस्कार से जोड़ना ठीक नहीं।" जवाहरलाल नेहरू भी कवि की इस बात से सहमत थे।

रवीन्द्रनाथ एक बार फिर दक्षिण भारत रवाना हुए। उनके साथ "शाप मोचन" नाटक के कलाकार भी थे। करीब बारह दिन चेन्नई में रहकर वे वाल्टेयर होते हुए लौटे। इसके बाद ही काशी हिन्दू विश्व विद्यालय के दीक्षांत समारोह में भाषण देने गए। जिस दिन रवीन्द्रनाथ काशी रवाना होने वाले थे, उसी दिन यानी 6 फरवरी 1935 को बंगाल के गवर्नर सर जॉन एंडरसन, जिन्हें क्रांतिकारियों के दमन में महारत हासिल थी, के शांतिनिकेतन में स्वागत का जबर्दस्त विरोध शुरू हुआ। लाट साहब की सुरक्षा के बहाने पुलिस ने कालेज के कुछ छात्रों को गिरफ्तार करना चाहा। इससे रवीन्द्रनाथ बेहद नाराज होकर बोले, "ठीक है आप लोग इस तरह लाट साहब का स्वागत कीजिए, मैं यहां से जा रहा हूं।" आखिरकार गवर्नर के पहुंचने के दिन शांतिनिकेतन में कोई मौजूद नहीं था। सभी लोग आसपास के गांवों में चले गए थे। लाट साहब सूना आश्रम देखकर लौट गए। उसके कुछ दिन बाद रवीन्द्रनाथ के वाराणसी पहुंचने पर वहां उनका दीक्षांत भाषण हुआ और उन्हें "डाक्टरेट" की उपाधि भी दी गई।

वाराणसी से इलाहाबाद। वहां से छात्र सम्मेलन के बुलावे पर लाहौर। वहां दो सप्ताह रहे। उन दिनों पंजाब में हिन्दू-मुसलमानों के आपसी संबंध बेहद खराब चल रहे थे। रवीन्द्रनाथ ने इस बारे में एक चिट्ठी में लिखा था- "पंजाब में हिन्दू-मुसलमानों के बीच जो अलगाव की तस्वीर देख आया वह बेहद चिंताजनक तथा शर्मनाक है।"

सन् 1934 में "चार अध्याय" नामक उनका उपन्यास छपा। जिस पर काफी विवाद भी हुआ। "दो बहनें", "मालंच", "बांसुरी" के बाद रवीन्द्रनाथ का यह आखिरी उपन्यास था। यह उपन्यास क्रांतिकारी आंदोलन पर लिखा गया था। कुछ लोग इस बात का प्रचार कर रहे थे कि क्रांतिकारियों के सरकारी दमन नीति के समर्थन में यह किताब लिखी गई थी, जबकि रवीन्द्रनाथ ने इस उपन्यास में दो क्रांतिकारी युवक-युवती के प्रेम और उनकी असफलता को दिखाया था। लेकिन बंगाल के कुछ रवीन्द्र विरोधी लोगों ने उस किताब के विरूद्ध कुप्रचार करके माहौल बिगाड़ने का काम किया। लेकिन यह कुप्रचार ज्यादा दिनों तक चला नहीं।

सन् 1935 में बंगीय साहित्य परिषद के रवीन्द्रनाथ के अठहत्तर वें जन्म दिन पर उन्हें सम्मानित किया। गौतम बुद्ध के जन्मदिन के सिलसिले में कलकत्ता के धर्मराजिक चैत्यविहार की सभा में रवीन्द्रनाथ को सभापति बनाया गया। उन्होंने अपने भाषण में कहा, "मैं जिन्हें अपने मन से श्रेष्ठ मानव समझता हूं, आज बैसाखी पूर्णिमा पर उन्हीं के जन्म समारोह में अपना प्रणाम निवेदन करने यहां आया हूं।"

इस समय यूरोप के आसमान में अकारण ही युद्ध के घने बादल नजर आने लगे। जर्मनी में हिटलर के कारनामों से कवि बहुत चिंतित थे। "प्रवासी" पत्रिका के सम्पादक और उनके दोस्त रमानंद चट्टोपाध्याय की एक चिट्ठी के जवाब में उन्होंने लिखा था - "मैं हिटलर का समर्थन नहीं करता।" इस समय यानी सन् 1935 में जापानी कवि नोगुची आए। उन्हें सम्मानित किया गया। मगर नोगुची के साथ बाद में रवीन्द्रनाथ का विवाद भी हुआ। जापान युद्ध में उन्होंने जापान को इसका दोषी ठहराया था, तथा जापान का समर्थन करने के लिए नोगुची की भी निंदा की। कुछ दिन बाद रामकृष्ण परमहंस की

जन्मशती समारोह के सिलसिले में रवीन्द्रनाथ ने एक कविता लिखी। उस समारोह के धर्म महासम्मेलन के वे सभापति भी बने।

सन् 1935 के दिसम्बर में शांतिनिकेतन में परिवार नियोजन आंदोलन की नेता मार्गेट सेंगर आई। उसके पहले वर्धा में रवीन्द्रनाथ की गांधी जी से इस विषय पर लंबी बहस हो चुकी थी। गांधी जी परिवार नियोजन के आधुनिक तरीकों के समर्थक नहीं थे। वे परिवार नियोजन ब्रह्मचर्य और संयम के जरिए करने के हिमायती थे। रवीन्द्रनाथ की राय उसके विपरीत थी। उन्होंने श्रीमती सेंगर के तरीके से ही परिवार नियोजन को उचित माना। उन्होंने बाद में श्रीमती सेंगर को एक लंबी चिट्ठी लिखी, जो उनकी पत्रिका "बर्थ कंट्रोल रिव्यू" में छपी थी। रवीन्द्रनाथ गांधी जी की तरह धर्मनीति को आंख मूंदकर मानने की बजाय उसकी सच्चाई पर जोर देते थे।

रवीन्द्रनाथ "चित्रांग" नृत्य नाटिका की मंडली के साथ उत्तर भारत के सफर पर निकले। वे इसके जरिए विश्वभारती के लिए धन जुटाना चाहते थे। पटना, इलाहाबाद, लाहौर होते हुए दिल्ली पहुंचने पर वहां उनकी भेंट गांधी जी से हुई। काफी देर तक दोनों में विभिन्न विषयों पर बातें हुईं। गांधी जी रवीन्द्रनाथ की गिरती सेहत से चिंतित हुए। गांधी जी ने जानना चाहा कि विश्वभारती को कितने धन की जरूरत है। रवीन्द्रनाथ ने बताया कि वे साठ हजार के घाटे में हैं। गांधी जी ने डी.जी. बिड़ला से वे रूपये दिलवा दिए और रवीन्द्रनाथ को अब ऐसी भाग-दौड़ के लिए मना किया। रवीन्द्रनाथ मेरठ में यह नाटक खेलकर वापस लौट गए।

शांतिनिकेतन में साहित्यकार शरतचंद्र चट्टोपाध्याय, इतिहासकार राधाकुमुद मुखोपाध्याय और राजनीतिक तुलसी गोस्वामी भी आए थे। ब्रिटिश प्रधानमंत्री मैकडोनॉल्ड के सांप्रदायिक आधार पर बंटवारे की

नीति के विरोध में वे एक जनसभा कर रहे थे। उस जनसभा में रवीन्द्रनाथ को भाषण देने के लिए वे निवेदन करने आए थे। रवीन्द्रनाथ ने 15 जुलाई 1936 को कलकत्ता के टाउनहाल में भाषण दिया। उन्होंने अपने भाषण में डरे हुए ऊँची जाति के हिंदुओं के हितों की वकालत नहीं की। बंगाल के मुसलमानों की लगातार बढ़ती हुई मांगों के विरोध में भी उन्होंने कुछ नहीं कहा। उन्होंने सिर्फ इतना कहा कि अब देश के भले के लिए धर्म तथा संप्रदाय से अलग हटकर सोचना ही उचित होगा।

ऐसे समय उन्हें कांग्रेस के सभापति जवाहरलाल नेहरू की एक चिट्ठी मिली, जिसमें उन्होंने लिखा था कि भारत में हर जगह व्यक्ति की आजादी खतरे में है। इस जन्म सिद्ध अधिकार को पाने के लिए संघ का गठन हुआ है। उन लोगों ने रवीन्द्रनाथ को इसका सभापति बनाया है।

कुछ समय से मुस्लिम समाज के एक वर्ग को बांग्ला साहित्य में मूर्ति पूजा का खतरा महसूस होने लगा था। मुसलमानों में इस बात से नाराजगी थी। "मोहम्मदी" नामक मासिक पत्रिका ने रवीन्द्रनाथ के "गांधारीर आवेदन" और "पुजारिनी" के विषय पर विरोध जताया। उनके अनुसार यह सब इस्लाम विरोधी था। रवीन्द्रनाथ को मजबूरन इसके विरोध में आगे आना पड़ा। उन्होंने ऐसे ही एक लेख में एक आलोचक की बात का जिक्र करते हुए लिखा कि उन्होंने पाप की प्रवृति के बारे में सावधान करते हुए मुझे काफी नसीहतें दी हैं। मैं उन्हें यह समझाना चाहता हूं कि नाटक-कविता आदि में पात्रों के जरिए जो सब बातें कही जाती हैं, उसमें लेखक की कल्पना ही प्रमुख होती है अक्सर वह उस कवि या लेखक के विचार नहीं होते।"

सन् 1937 में इंग्लैंड से अमियचन्द्र चक्रवर्ती ने एक चिट्ठी में

रवीन्द्रनाथ से अफ्रीका पर एक कविता भेजने का अनुरोध किया। लंदन में इथोपिया के राजां हाइले सेलासी की यह इच्छा थी। रवीन्द्रनाथ ने "अफ्रीका" नाम से एक कविता लिखकर भेज दी। अंग्रेजी में उसका अनुवाद पढ़कर हाइले सेलासी बहुत खुश हुए। उगांडा के राजकुमार नियाबंगो ने उस कविता को बंटू तथा सोहली भाषाओं में अनुवाद करवाया।

19 फरवरी 1937 को कलकत्ता विश्वविद्यालय का उपाधि वितरण जलसा था। उपाचार्य श्यामाप्रसाद मुखोपाध्याय के कहने पर रवीन्द्रनाथ मुख्य अतिथि बनकर कलकत्ता गए। रवीन्द्रनाथ ने अपना भाषण बांग्ला में पढ़ा। विश्वविद्यालय के इतिहास में यह एक बड़ी बात थी। वहां से वे बंगीय साहित्य सम्मेलन में भाग लेने के लिए चंदन नगर गए।

14 अप्रैल 1937 को चीन भवन का उद्घाटन शांतिनिकेतन में हुआ। इस समारोह में रवीन्द्रनाथ ने "चीन और भारत" विषय पर अपना भाषण पढ़ा। रवीन्द्रनाथ ने उन्हीं दिनों सितारों पर बांग्ला में एक किताब लिखी, जिसका नाम रखा - "विश्व परिचय।" इसके बाद वे आराम करने के लिए अल्मोड़ा चले गए।

वहां से लौटकर उन्होंने अपनी जमींदारी राजशाही जिले के पतिसर में जाने का इरादा किया। वहां के लोग उनके आने से बहुत खुश हुए। कवि के साथ, उनके सचिव सुधाकांत राय चौधुरी ने इस सफर के बारे में लिखा है - "ऐसे बुरे साम्प्रदायिक माहौल के पतिसर में, जहां मुसलमानों की तादाद ज्यादा थी, उनके दिलों में रवीन्द्रनाथ के लिए कितना आदर था, इसे बिना देखे नहीं समझा जा सकता। जिन्होंने खुद नहीं देखा वे इसे महसूस नहीं कर सकते।"

रवीन्द्रनाथ ने अपनी प्रजा से विदा लेते हुए कहा कि कितना अच्छा

होता कि वे अपनी प्रजा के ही बीच रहकर अपना जीवन बिताते। लेकिन उन्हें और भी कई कामों से अपना जीवन दूसरी जगहों में दूसरों के अनुसार बिताना पड़ा है। अब बीमारी के कारण वहां बसना संभव भी नहीं है। उनकी प्रजा, जिनमें मुसलमानों की संख्या ज्यादा थी, ने आंसू भरी आंखों से नदी के किनारे तक आकर उन्हे विदा किया।

पतिसर से लौटने के बाद कलकत्ता के टाउनहाल में एक और जनसभा के वे सभापति बनाए गए। यह सभा अंडमान के राजनीतिक बंदियों के अनशन और हड़ताल के प्रति लोगों की सहानुभूति जताने के लिए की गई थी। इसके अलावा बंगाल की मुसलिम लीग सरकार की निर्दयी मानसिकता तथा उसके व्यवहार की निंदा भी करना था। रवीन्द्रनाथ ने अंडमान के बंदियों को तार के जरिए समाचार भेजा कि "सारा बंगाल अनशन और हड़ताल कर रहे तुम सब की कुशलता के बारे में जानने के लिए बेचैन हैं, पूरा देश तुम्हारे साथ है।" 14 अगस्त 1937 को बंगाल में "अंडमान दिवस" मनाया गया। शांतिनिकेतन में भी एक सभा बुलाई गई। उसमें रवीन्द्रनाथ ने अंग्रेजों की सजा की नीति में जो बर्बरता छिपी हुई थी, उसका खुलासा किया। उन्होंने राजनीतिक बंदियों को दी जाने वाली सजा के गलत इस्तेमाल की निंदा की।

कुछ दिनों बाद वे इलाज के लिए कलकत्ता पहुंचे। वहां वे बरानगर में प्रशांतचंद्र महलानवीस के यहां ठहरे। उस वक्त कलकत्ता में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का सम्मेलन चल रहा था। वहां बड़े-बड़े कांग्रेसी नेता आए हुए थे। रवीन्द्रनाथ की बीमारी की खबर पाकर उनसे मिलने जवाहरलाल, सरोजिनी नायडू, आचार्य कृपलानी जैसे नेता पहुंचे। महात्मा गांधी भी उनसे मिलना चाहते थे। लेकिन उनके पास आते समय मोटर में खुद उनकी तबीयत खराब होने से वे वापस

शरतचंद्र बोस के यहां लौट गए, जहां वे ठहरे हुए थे। यह खबर पाकर रवीन्द्रनाथ अपनी बीमारी की परवाह किए बिना बीमार गांधी जी को देखने उडबर्न पार्क में शरतचंद्र बोस के यहां पहुंचे। गांधी जी सबसे ऊपर की मंजिल में ठहरे हुए थे। रवीन्द्रनाथ के लिए उतनी सीढ़ियां चढ़कर ऊपर जाना संभव नहीं था। इसलिए जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचंद्र बोस, शरतचंद्र बोस और महादेव देसाई उन्हें एक कुर्सी पर बिठाकर खुद अपने कंधों पर वह कुर्सी उठाकर गांधी जी के पास ले गए। गांधी जी की एक प्रार्थना सभा में भी उन दिनों रवीन्द्रनाथ ने हिस्सा लिया था। प्रशांतचंद्र के घर, बरानगर गुप्त निवास में एक दिन सुभाषचंद्र बोस, रवीन्द्रनाथ से मिलने पहुंचे थे। देश के मौजूदा राजनीतिक हालात पर दोनों में काफी देर तक बातचीत हुई थी।

उन्हीं दिनों देश में राष्ट्रीय संगीत को लेकर बहस-मुबाहिसा जोरों पर था। एक गुट "वंदेमातरम् " गीत की वकालत कर रहा था। लेकिन जवाहरलाल आदि कई नेताओं का कहना था कि वह पूरा गीत भारत के हर जाति के लोगों के गले नहीं उतरेगा। रवीन्द्रनाथ ने जवाहरलाल नेहरू को एक चिट्ठी में लिखा कि उस पूरे गीत को इस देश का राष्ट्रीय गीत बनने में कठिनाई है। इस कारण रवीन्द्रनाथ को बंगाल के कई कट्टर राष्ट्रवादी पत्र-पत्रिकाओं तथा प्रमुख लोगों का गुस्सा झेलना पड़ा। रवीन्द्रनाथ की राय मानकर, नवम्बर 1937 में बंकिमचंद्र के लिखे और रवीन्द्रनाथ के सुरों में ढले उस गीत का पहला छंद, कांग्रेस अधिवेशन में राष्ट्रगान के रूप में स्वीकार कर लिया गया। रवीन्द्रनाथ के लिखे "जन गण मन" गीत को आजाद भारत में काफी बहस के बाद राष्ट्रगीत का दर्जा मिला। "वंदेमातरम् " गीत के पहले छंद को भी राष्ट्रगीत के रूप में सम्मान दिया गया। "जन गण मन" गीत के बारे में कुछ लोगों की शिकायत है कि वह ब्रिटिश राज की

वंदना है। ऐसे लोगों को प्रबोधचंद्र सेन की लिखी किताब "भारत का राष्ट्रीय गीत" जरूर पढ़नी चाहिए। उसमें यह बात साबित की गई है कि यह गीत किसी भी आदमी के लिए नहीं लिखा गया था। इसके बाद किसी प्रकार की बहस या संदेह की गुंजाइश नहीं रह जाती।

आठ

नेताओं में गांधी जी ही रवीन्द्रनाथ के सबसे करीबी थे। सन् 1915 में उनसे मुलाकात के बाद से जीवन भर दोनों का गहरा संबंध बना रहा। इसके अलावा जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचंद्र बोस से भी उनका स्नेह संबंध था। सन् 1916 में मुंबई में रवीन्द्रनाथ की सौवीं जयंती समारोह का उद्घाटन करते हुए नेहरू जी ने कहा था, "राजनीति में



में गांधी जी के करीब होने के बावजूद विचारों में मैं रवीन्द्रनाथ के करीब था। यह बात सही भी थी। सन् 1936 में कमला नेहरू की मृत्यु की खबर पाकर रवीन्द्रनाथ ने शांतिनिकेतन में एक शोक सभा बुलाई थी। उसमें भाषण देते हुए उन्होंने नेहरू जी को "ऋतुराज" कहा था। रवीन्द्रनाथ मानते थे कि नेहरू जी नए भारत के नवयौवन के दूत हैं। वैज्ञानिक मेघनाथ साहा ने भारत के भविष्य की योजना का जो मजमून बनाकर रवीन्द्रनाथ के पास भेजा था, उस पर विचार करने के लिए रवीन्द्रनाथ ने नेहरू जी और सुभाषचंद्र बोस को शांतिनिकेतन में बुलाया था। सन् 1939 में नेहरू जी ने चीन सफर से पहले जोड़ासांको में रवीन्द्रनाथ से उस पर काफी देर तक चर्चा भी की थी।

सुभाषचंद्र बोस भी रवीन्द्रनाथ के बहुत करीब थे। जब विलायत से पहली बार सुभाषचंद्र कलकत्ता लौट रहे थे तब उसी जहाज में रवीन्द्रनाथ भी थे। अपने देश की आजादी के लिए उन्हें क्या करना चाहिए, इस विषय पर उनकी रवीन्द्रनाथ से बात भी हुई थी। सुभाषचंद्र बोस को जब भी जरूरत पड़ती वे रवीन्द्रनाथ से सलाह लेने आ जाते। वे शांतिनिकेतन कई बार गए थे। एक बार रवीन्द्रनाथ ने भी उनका स्वागत शांतिनिकेतन में किया था। देश के भविष्य की योजनाओं पर रवीन्द्रनाथ से सलाह करने नेहरू जी और सुभाष चंद्र बोस शांतिनिकेतन आते-जाते रहते थे। सुभाषचंद्र बोस को दूसरी बार कांग्रेस का अध्यक्ष बनाने के लिए रवीन्द्रनाथ ने अपनी ओर से काफी कोशिश की थी। पट्टामि सीतारमैया को हराकर सुभाषचंद्र बोस जब दूसरी बार कांग्रेस के सभापति बने तब दुर्भाग्य से कांग्रेस कार्य समिति के अधिकतर सदस्यों ने इस्तीफा दे दिया। इससे कांग्रेस के कामकाज पर असर पड़ा। आखिरकार सुभाषचंद्र बोस ने अध्यक्ष पद छोड़ दिया। इस घटना से रवीन्द्रनाथ को बहुत दुःख पहुंचा। उन्होंने जनता की

ओर से सुभाषचंद्र बोस को सम्मानित करके उन्हें "देशनायक" की उपाधि दी। उन्होंने अपना "ताश का देश" नाटक भी सुभाषचंद्र बोस को भेंट किया था।

रवींद्रनाथ को जब खबर मिली थी कि बंगाल सरकार ने 1100 राजनीतिक बंदियों को रिहा कर दिया है, तब उन्हें बहुत खुशी हुई। लेकिन उन्हीं दिनों उनके वैज्ञानिक दोस्त जगदीशचंद्र बोस की मृत्यु की खबर पाकर वे बहुत दुःखी हुए। उसके कुछ दिन बाद ही उन्हें शरतचंद्र चटर्जी के परलोक सिधारने की खबर मिली। उनका दुःख और बढ़ गया। उन्हीं दिनों सन् 1938 में शांतिनिकेतन में नेहरू जी के हाथों "हिन्दी भवन" और हिन्दी विभाग की शुरूआत हुई।

इसके बाद वे कलिम्पोंग गए। वहां से मैत्रेयी देवी के मेहमान होकर मंग्पू पहुंचे। उस बार नए साल के दिन वे पूरी दुनिया में बढ़ते जा रहे तनावों से बहुत चिंतित थे। पूरे यूरोप में दूसरे महायुद्ध की तैयारी चल रही थी। शांतिनिकेतन से उन्होंने डा. अमियचंद्र चक्रवर्ती को एक चिट्ठी में लिखा - "मेरे जीवन के अंतिम दिनों में मनुष्य का इतिहास किस बुरी तरह महामारी की चपेट में आकर उसका शिकार बनता जा रहा है, इसे देखना बड़ा कठिन है। एक तरफ राक्षसी होड़ लगी है तो दूसरी तरफ कायरता में भी कोई पीछे नहीं है। ऐसी कोई बड़ी अदालत नहीं रही जहां पहुंचकर मानवता की दुहाई दी जा सके।"

कलिम्पोंग में रहते हुए "विद्यासागर रचनावली" का छपा हुआ पहला खंड पाकर उन्होंने प्रकाशक को लिखा - "हम उनके प्रति अपनी श्रद्धा के जरिए ही उन जैसे भारतीय के गौरव के भागीदार होने की कामना कर सकते हैं। अगर ऐसा न कर सके तो यह हमारे पतन की बात होगी।" उनके कलिम्पोंग रहते समय बंगीय साहित्य परिषद की ओर से बंकिमचंद्र की सौवीं जयंती मनाई गई। कवि ने उस मौके

पर एक कविता लिखकर भेजी थी, जिसकी पहली पंक्ति थी - 'रात का अंधेरा होगा दूर, जब यात्री के हाथों में होगी मशाल।'

18 नवम्बर 1938 को कमाल अतातुर्क की मृत्यु की खबर पाकर शांतिनिकेतन में छुट्टी कर दी गई। रवीन्द्रनाथ ने अतातुर्क के बारे में एक भाषण दिया, जिसमें कहा, "उन्होंने तुर्की को राजनीतिक आजादी दी थी, मगर यह कोई खास बात नहीं है। खास बात यह है कि उन्होंने तुर्की को अपनी आत्मा में पैठी गरीबी से आजादी दिलाई थी। मुस्लिम धर्म की कट्टरता के तूफान का मुकाबला करते हुए उन्होंने धार्मिक पाखंड को मानने से इनकार किया था। सिर्फ तुर्की को आजाद करने के लिए नहीं बल्कि उसकी जड़ता से बाहर निकालने के कारण ही आज पूरे एशियावासी उनके न रहने पर दुःखी हैं।"

रवीन्द्रनाथ का लेखन लगातार चल रहा था। साथ ही नाटकों की तैयारी भी। एक बार केरल के प्रसिद्ध कवि बल्लतौल भी शांतिनिकेतन आए। उनके साथ उनकी नृत्यमंडली भी थी। कवि ने उनका नृत्य देखा। कुछ दिनों के बाद कवि पुरी घूमने गए। वहां उन्होंने कई कविताएं लिखीं। वहां से लौटने के बाद मंग्पू गए, मैत्रेयी देवी के यहां। वहां 17 मई 1939 से 17 जून 1939 तक रहकर कलकत्ता लौटे। सुभाषचंद्र बोस के कहने पर उन्होंने 19 अगस्त को "महाजाति सदन" की नींव रखी। "महाजाति सदन" नाम भी रवीन्द्रनाथ का ही रखा हुआ है।

रवीन्द्रनाथ मैत्रेयी देवी के मेहमान बनकर एक बार फिर मंग्पू गए। वे वहां दो महीने तक रहे। इस वक्त यूरोप में महायुद्ध शुरू हो गया था। कवि ने दुःखी होकर लिखा, "हमारे देखते-देखते यह दुनिया कितनी बिगड़ती जा रही है। पश्चिमी सभ्यता पर हमें बेहद भरोसा था। यह बात मैं भूल ही गया था कि अब सभ्यता का मतलब

सुविधाओं के भोग की कला हो गई है। अब इस भोग-विलास पर किसी को भी शर्म महसूस नहीं होती।"

कवि शांतिनिकेतन लौटकर विद्यासागर स्मृति मंदिर का उद्घाटन करने मेदिनीपुर गए। हावड़ा स्टेशन पर रेल के डिब्बे में सुभाषचंद्र बोस उनसे मिलने पहुंचे। कांग्रेस हाईकमान से उनके मतभेद पर दोनों में बातें हुईं। मेदिनीपुर में भाषण देने के बाद रवीन्द्रनाथ शांतिनिकेतन लौट गए। वहां पौष मेला मनाया गया। उसमें भाषण देते हुए रवीन्द्रनाथ ने दूसरे महायुद्ध के खतरों की चर्चा की। उस बार 25 दिसम्बर को, ईसा मसीह के जन्मदिन पर लिखा - "एक दिन राजा को दुहाई देकर, कुछ लोगों ने ली थी उनकी जान।"

सन् 1940 में गांधी जी शांतिनिकेतन आए। साथ में उनकी पत्नी कस्तूरबा गांधी भी थी। उस दिन यानी 17 फरवरी को आम्रकुंज में कवि ने उनका स्वागत किया। गांधी जी ने कहा कि यहां आकर उन्हें लगता है जैसे वे अपने घर में ही आ गए हैं। शाम को "उत्तरायण" में उनके स्वागत में "चंडालिका" नृत्य नाटिका का मंचन हुआ। शांति निकेतन घूमने के बाद गांधी जी ने कहा, "शांतिनिकेतन की यात्रा मेरे लिए तीर्थयात्रा की तरह है।"

19 फरवरी को शांतिनिकेतन से जाते समय रवीन्द्रनाथ ने बोलपुर स्टोशन पहुंचकर गांधी जी के हाथों में एक लिफाफा थमाया। गाड़ी छूटने के बाद गांधी जी ने लिफाफे को खोलकर पढ़ा। रवीन्द्रनाथ ने लिखा था कि उनकी मृत्यु के बाद गांधी जी शांतिनिकेतन का भार संभाल लें। गांधी जी ने तुरंत जवाब में लिखा, "आप सौ साल जिएं।" विश्वभारती और शांतिनिकेतन के बारे में जो कुछ संभव था उसे करने की उन्होंने हामी भर दी। गांधी जी ने कलकत्ता में अबुलकलाम आजाद को वह चिट्ठी दिखाई। नेहरू जी को भी। उसी के आधार पर

रवीन्द्रनाथ की मृत्यु के दस साल और गांधी जी मृत्यु के तीन साल बाद केन्द्र सरकार ने विश्वभारती की जिम्मेदारी ले ली।

रवीन्द्रनाथ सिउड़ी में एक नुमाइश का उद्घाटन करने गए। वहां से लौटकर आए बांकुड़ा। वहां भी एक नुमाइश का उद्घाटन किया। अपने स्वागत के जवाब में उन्होंने एक भाषण दिया। कुछ दिनों बाद कलकत्ता के एक नर्सिंग होम में दीनबंधु एंड्रूज की मृत्यु की खबर उन्हें मिली। रवीन्द्रनाथ ने बहुत दुःखी होकर कहा, "मेरी आंखों के सामने उनकी उस दिन की छवि तैर रही है, जब गांव की लाल मिट्टी की धूल में मैले हो गए कपड़े पहनकर, अपनी बार-बार खुल जाती धोती की लांग संभालते हुए वे किसी संन्यासी की तरह जा रहे थे।

कुछ दिनों के बाद उनके प्रिय भतीजे सुरेन्द्रनाथ की मृत्यु हुई। उनका दुःख और बढ़ गया। कलिम्पोंग जाते वक्त कलकत्ता में सुरेन्द्रनाथ से उनकी आखिरी बार भेंट हुई थी। कलिम्पोंग से वे मंग्पू गए। उन्हें कलिम्पोंग में अपने प्रिय शिष्य कालीमोहन घोष की मृत्यु की खबर मिली। श्री निकेतन को बनाने में उनका काफी योगदान था।

7 अगस्त 1940 को रवीन्द्रनाथ को ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की डी. लिट. की उपाधि देने के लिए फेडरल कोर्ट के प्रधान न्यायाधीश सर मॉरिस गयार और सर्वपल्ली राधाकृष्णन आए। वे ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि के रूप में आए थे। उन्हें जो सम्मान भेंट किया गया वह ऑक्सफोर्ड की रीति के अनुसार लैटिन भाषा में था। जापान में रवीन्द्रनाथ ने अपना भाषण संस्कृत में दिया।

उसके कुछ दिन पहले जर्मनी ने पोलैंड पर हमला कर दिया था। इस घटना पर रवीन्द्रनाथ ने एक विज्ञप्ति में कहा था, "इस महासंकट के समय जब सिर्फ कुछ देश ही नहीं, बल्कि सभ्यता का पूरा महल ही

संकट में पड़ गया है, तब भारत का कर्त्तव्य एकदम स्पष्ट है। भारतवर्ष की सहानुभूति पोलैंड के साथ है।" दूसरा महायुद्ध शुरू होंने के बाद ही उन्होंने डा. अमियचंद्र चक्रवर्ती को एक और चिट्ठी में लिखा था, "इस युद्ध में इंग्लैंड और फ्रांस की विजय हो, मैं दिल से यही कामना करता हूं, क्योंकि मानव इतिहास में फासीवाद और नाजीवाद के कलंक का भार अब और सहन नहीं होता।

दूसरे महायुद्ध की बढ़ती आग से रवीन्द्रनाथ को पल भर के लिए भी चैन नहीं था। हिटलर की फौजी ताकत उन्हें और चिंता में डाल रही थीं। उन्होंने 15 जून 1940 को कलिम्पोंग से, अमरीका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट को एक तार भेजकर, इस महायुद्ध को रोकने के लिए कदम उठाने का निवेदन किया।

शांतिनिकेतन में तुलसीदास की पुण्य तिथि पर आयोजित सभा में भाषण देते हुए उन्होंने कई बातें कहीं, "तुलसीदास ने राम के बारे में सारी जानकारियां वाल्मीकि के रामायण से ली थीं, लेकिन उन चीजों में अपनी श्रद्धा-भक्ति को मिलाकर उसे एकदम नई चीज बना दी। यही उनकी अपनी देन है। उसमें पुरातन का दोहराव नहीं है बल्कि उनकी अपनी प्रतिज्ञा नजर आती है। उन्होंने अपने नई सोच से पुरानी बातों में नयापन भर दिया। अपने भक्ति-भाव से उन्होंने रामायण को नए तरीके से लिखा। साहित्य में उनकी यह बड़ी देन है।"

19 सितम्बर 1941 को रवीन्द्रनाथ अपने आखिरी सफर पर निकले। उनकी मंजिल कलिम्पोंग थी। उनका लेखन रूका नहीं था। अचानक कलिम्पोंग में वे काफी बीमार पड़ गए। एक दिन बेहोश भी हो गए। उनके साथ अकेली प्रतिभा देवी ही थीं। उनकी समझ में नहीं आया कि वे क्या करें। रथीन्द्रनाथ जमींदारी के सिलसिले में बाहर थे। उन्हें तार भेजा गया। प्रतिभादेवी ने टेलीफोन से प्रशांतचंद्र महलानवीस

और अनिल कुमार चंद को यह खबर दी। प्रशांतचंद्र कलकत्ता के तीन बड़े डाक्टरों को लेकर वहां पहुंचे। शांतिनिकेतन से अनिल कुमार चंद, सुरेन्द्रनाथ कर और सुधाकांत रायचौधुरी भी घबराकर कलिम्पोंग पहुंचे रथीन्द्रनाथ बीमारी की खबर पाकर भागे-भागे आए।

रवीन्द्रनाथ को कलकत्ता ले जाने के बाद उनके स्वास्थ्य में सुधार हुआ। उनकी बीमारी की खबर पाकर गांधी जी ने भी अपने सचिव महादेव देसाई को रवीन्द्रनाथ का हालचाल लेने भेजा। प्रतिभा देवी ने लिखा है - "महादेव देसाई ने, अनिल कुमार के साथ पिताजी के कमरे में आकर महात्मा जी की सहानुभूति उन्हें जताई। अनिल कुमार ने ऊंची आवाज में बोलते हुए गुरूदेव को महादेव देसाई की बात समझाई। उस वक्त रवीन्द्रनाथ ठीक से सुन नहीं पाते थे। उनकी आंखों से आंसू बहने लगे। उनकी आंखों में मैंने पहली बार आंसू देखे। खुद पर उन्हें इतना संयम था कि बड़े से बड़े शोक में भी मैंने कभी उन्हें रोते हुए नही देखा, मगर आज जैसे बांध टूट गया था।"

रवीन्द्रनाथ फिर शांतिनिकेतन में लौटे। उन दिनों वे "रोग-शय्या" की कविताएं लिख रहे थे। इसके बाद उन्होंने 'आरोग्य' कविता संकलन की कविताएं लिखीं। उन दिनों चीन से एक सद्भावना मिशन आया था। उसके नेता ताई ची ताओ थे। रवीन्द्रनाथ ने बिस्तर पर लेटे हुए ही उनका स्वागत किया। रवीन्द्रनाथ ने उनके दु:ख में अपनी सहानुभूति जताई। उन लोगों की बहादुरी में उन्हें आशा की किरण नजर आई। भारत और चीन के मुक्ति धर्म के आदर्श के प्रति रवीन्द्रनाथ को बड़ा भरोसा था। उन्हें आशा थी कि एक दिन चीन अपने सनातन शांति के संदेश को फिर से इस दुनिया में फैलाएगा।

रवीन्द्रनाथ बिस्तर पर लेटे-लेटे कहानी और कविताएं बोलकर लिखाते थे "गल्प-सल्प" में उन्होंने लिखा है -

खत्म हो रहा है नाटक
पर्दा गिरने के बाद बुझ रही हैं
एक-एक कर बत्तियां
रंगीन चित्र की रंग-रेखाएं
धुंधली आंखों से नजर नहीं आएं।
प्रकाश से ज्यादा भर रहा है धुआं।

उनके जीवन के अंतिम कुछ महीने बिस्तर पर ही बीते। उस हालत में ही अपने नाती सौमेन्द्रनाथ टाकुर के अनुरोध पर उन्होंने मनुष्यों की विजय भावना पर आधारित एक गीत लिखा। वही उनका अंतिम गीत था - 'आ रहा है वह महामानव।' उनके अंतिम जन्म दिन पर यही गीत गाया गया। जन्म दिन के उसी अवसर पर उनकी पुरानी कविता को नए गीत में ढालकर लिखा और गाया गया - "हे नूतन, एक बार फिर दर्शन दो" उसी अवसर पर उनका अंतिम भाषण पढ़ा गया - "सभ्यता का संकट।" उस भाषण में उन्होंने एक जगह कहा था - "भाग्य चक्र के फेर में एक न एक दिन अंग्रेजों को भारत का राजकाज समेटकर यहां से जाना ही होगा। लेकिन तब किस भारत को वह छोड़ जाएगा। लक्ष्मी विमुख दीन-दरिद्र कूड़े ढेर को?" उन्होंने यह भी कहा - "आज मैं उस पार जाने के लिए चल पड़ा हूं।" पिछले घाट पर मैं क्या छोड़ आया? सभ्यता के दंभ से भरे इतिहास के मलवे का टूटा-फूटा स्तूप! लेकिन मनुष्य पर भरोसा न करना पाप होगा। यह भरोसा मुझमें अंतिम दम तक करना पड़ेगा।"

उनके अंतिम जन्म दिन के कुछ दिनों बाद त्रिपुरा के महाराजा शांतिनिकेतन में उन्हें "भारत भास्कर" की उपाधि देने आए। उनके कवि जीवन की शुरूआत में उनकी कविताओं की किताब "भग्न हृदय" के लिए त्रिपूरा राज दरबार की ओर से उन्हें सम्मानित किया

गया था। जीवन के अंतिम दिनों में भी उसी त्रिपुरा के राज दरबार से उन्हें अंतिम सम्मान मिला।

सम्मान की घोषणा में कहा गया था - "रवीन्द्रनाथ की शुरूआती रचनाओं में, भविष्य के बड़े लेखक होने की संभावना को देखकर, त्रिपुरा के वर्तमान राजा के परदादा महाराज वीरचंद माणिक्य बहादुर ने, युवा रवि को राजकीय सम्मान प्रदान किया था।"

लगभग उन्हीं दिनों रवीन्द्रनाथ को, एक विदेशी महिला द्वारा भारत के विरूद्ध किए जा रहे बकवास का, विरोध करना पड़ा। मिस राखबोन नाम की एक अंग्रेज महिला ने भारत की निंदा करते हुए एक खुली चिट्ठी लिखी थी। उनकी चिट्ठी का कुल सार यह था कि अंग्रेजों द्वारा दी गई पश्चिमी शिक्षा से ही भारतीयों ने उन्नति की है मगर वे ही लोग आज लड़ाई में इंग्लैंड के सहायता करने के लिए तैयार नहीं हैं। वे एहसान फरामोश हैं।

रवीन्द्रनाथ ने अपनी बीमारी में ही उस चिट्ठी के जवाब में लिखा, जो देश के लगभग सभी अखबारों में छपा। अपने जवाब में एक जगह उन्होंने लिखा था, "दो सौ साल से इस देश का धन-दौलत लूटने वाली अंग्रेज सरकार ने हमारे देश की गरीब आम जनता के लिए क्या किया है? जरा चारों तरफ नजर उठाकर देखिए, आपको भूखे लोग तड़पते हुए नजर आएंगे। मैंने थोड़े से पानी के लिए गांव की औरतों को कीचड़ खोदते हुए देखा है, क्योंकि भारत के गांवों में स्कूलों से भी ज्यादा कमी कुओं की हैं। मुझे पता है कि आज इंग्लैंड के लोग भी अकाल के दरवाजे पर खड़े हुए हैं। मुझे उनके लिए दुःख है लेकिन जब एक तरफ मैं देखता हूं कि खाने के सामान से भरे जहाजों को ब्रिटिश नौसेना के पहरे में इंग्लैंड पहुंचाया जा रहा है, दूसरी तरफ वे घटनाएं भी याद आती हैं कि इस देश के एक जिले के लोग जब भूख

से मर रहे थे, मगर दूसरे जिले से अन्न की एक भी गाड़ी भेजकर उन्हें सहायता नहीं पहुंचाई गई थीं, तब मैं विलायत के अंग्रेज और यहां के अंग्रेजों में फर्क किए बिना रह नहीं पाता।"

मिस राखबोन ने, खासकर जवाहरलाल नेहरू के खिलाफ, अपना जहर उगला था। उन दिनों वे जेल में थे। इसलिए बीमार होते हुए भी रवीन्द्रनाथ को ही उसका विरोध करना पड़ा। रवीन्द्रनाथ के इस जवाबी हमले ने देश के लोगों में नया जोश भर दिया।

रवीन्द्रनाथ की हालत बिगड़ती जा रही थी। एलोपैथी, होम्योपैथी, वैद्यक - किसी भी दवा से उन्हें फायदा नहीं हो रहा था। आखिरकार कलकत्ता में डा. ललित बनर्जी से उनका आपरेशन कराने की बात सोची गई। 25 जुलाई 1941 को कवि को कलकत्ता लाया गया। डा. नीलरतन सरकार और डा. विद्यानचंद्र राय ने उनकी जांच की। 30 जुलाई को उनका आपरेशन किया गया। आपरेशन के दिन भी सुबह को उन्होंने मुंहजबानी एक कविता लिखवाई - अपनी आखिरी कविता - 'अपनी सृष्टि का पथ तुम्हीं ने रोक रखा है, विचित्र छलना जाल में है छलनामयी।'

आपरेशन के दो-तीन दिन बाद उनकी हालत ज्यादा बिगड़ गई। आखिरकार 7 अगस्त 1941 को दोपहर 12 बजकर 10 मिनट पर उन्होंने आखिरी सांस ली। उसी दिन नीमतला श्मशान में उनका दाह संस्कार कर दिया गया। इस तरह महाकवि का महाप्रयाण हुआ।

आईकान, फतेहनगर, नयी दिल्ली द्वारा लेजर कंपोज तथा
ब्यूटी प्रिंट, पहाड़गंज, नयी दिल्ली द्वारा मुद्रित